॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अत्रि स्मृतिः॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

अत्रि स्मृतिः

हुताग्निहोत्रमासीनमत्रिं वेदविदां वरम् ॥
सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नम स्कृतम् ॥ १॥

अग्निहोत्र इत्यादि से निश्चिन्तमन युक्त बैठे हुए वेद की विधि के जाननेवालों मे प्रधान शाखा के पारदर्शी ऋषियों के पूज्य महर्षि अत्रिजीको ॥१॥

नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रवन् ॥
हितार्थं सर्वलो कानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥

प्रणाम करके ऋषि बोले कि, हे भगवन् जिसके करने से त्रिलोकी का कल्याण हो, आप उसी विषय को हमसे कहिये ॥२॥

अत्रिरुवाच ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥
तत्सर्वे संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥३ ॥

अत्रिजी बोले कि, हे वेद शास्त्र अर्थतत्त्व जानने वाले ऋषियो तुमने जैसे सन्देहयुक्त अर्थात् अनिश्चित विषय को पूछा है और उसे मैंने जैसा देखा और जैसा सुना है उस सभी का वर्णन करूंगा ॥३॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥
जत्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ४॥

महर्षि अत्रि जी ने सम्पूर्ण तीथों के जलसे आचमन, समस्त देवताओं को प्रणाम और सम्पूर्ण सूक्तों का जप करके सम्पूर्ण शास्त्रों के अनुसार ॥ ४ ॥

सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥
चतुर्णामपि वर्णा नामतिः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण पाप और सन्देहोंका नाश करनेवाला, चारों वर्णों का हितकारी सनातन धर्मशास्त्र निर्माणकिया ॥५॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥
सर्वपापैः प्रमुच्यते श्रुखेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥६॥

इस संसार में जो इच्छानुसार पाप करने वाले हैं और दो धर्म की निन्दा करते हैं वह भी इस उत्तम धर्मशास्त्र के श्रवण करने से सम्पूर्ण पापो से मुक्त हो जायेंगे ॥६॥

तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तभ्यश्च धर्मतः ॥७॥

इस कारण वेद के जानने वाले यत्न सहित इसका पाठ करें और धर्म के अनुसार उत्तम चरित्रों वाले शिष्यों को भी सुनाये ॥७॥

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ॥
एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥८॥

निन्दित कुल में उत्पन्न हुए, दुराचरण करने वाले, मूर्ख, शूद्र और दुष्ट स्वभाव वाले ब्राह्मण इन पांच प्रकार के मनुष्यों को श्रेष्ठ ब्राह्मण इसकी शिक्षा न दें ॥८॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥
पृथिव्यां नास्ति तद्रव्यं यदत्वा हनुणी भवेत् ॥९॥

यदि गुरु ने शिष्य को एक अक्षर भी पढाया है, तथापि पृथ्वी में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे अर्पण कर शिष्य ऋण से मुक्त हो सके ॥९॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ॥
शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेवभिजायते ॥ १० ॥

एक अक्षर के शिक्षा देनेवाले गुरु का जो मनुष्य सम्मान नहीं करते वह सौ: जन्म तक कुत्ते के जन्म को भोगकर अन्त में चांडाल हो कर जन्म लेते हैं ॥१०॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं चैवावमन्यते ॥
स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥११॥

जो मनुष्य वेदको पढकर उसके गर्व से अन्य शास्त्र के उपदेश को ग्रहण नहीं करता वह इक्कीस बार पशु की योनि में जन्म लेता है ॥११॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥
प्रिया भवंति लोकस्य स्खे स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥१२॥

जो मनुष्य अपने आचार के पालन में तत्पर हैं अर्थात् कभी कुमार्ग में पर नहीं धरते वह दूर होने पर भी मनुष्यों की प्रीति के पात्र हैं ॥१२॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ।
प्रतिग्रहोध्यापनं च याजनं चंति वृत्तयः ॥१३॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ कराना यह तीन जीविका है ॥१३॥

क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ।
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥१४॥

क्षत्रियों के पांच कार्य है, उनमें यजन, दान, अध्ययन ग्रह तीन तपस्या है, और शस्त्र का व्यवहार और प्राणियों की रक्षा करना यह दो जीविका हैं ॥१४॥

दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ।
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥१५॥

वैश्य को भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या है और वार्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, गौओं की रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका है, शूद्रों की, ब्राह्मणों की सेवा करना यही तपस्या और शिल्पकार्य उनकी जीविका है ॥१५॥

तदेतत्कर्माभिहित संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥
बहुमानमिह प्राप्य प्रयोति परमां गतिम् ॥१६॥

मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्म के अनुसार चलने पर इस काल में बहुत सा सम्मान प्राप्तकर परलोक में श्रेष्ठ गति को पाते हैं ॥१६॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥१७॥

जो पूर्वोक्त अपने अपने धर्म का त्यागकर दूसरे धर्म का आश्रय करते हैं, राजा उनको दण्ड देकर स्वर्ग का भागी होताहै ॥१७॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोपि वर्गमश्नुते ॥
परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवव ॥१८॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, दूसरों का धर्म सुन्दर पराई स्त्री के समान त्याग के योग्य है ॥१८॥

वध्यो राज्ञा स वै शद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वद्वेश्च वै जलम् ॥१९॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणों के उचित कर्म में रत होने से शूद्र का राजा वध करे, कारण कि जलधारा जिस प्रकार से अग्नि को नष्ट करता है, उसी प्रकार से यह जप होम में तत्पर हुआ शुद्ध सम्पूर्ण राज्य का नाश करता है ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथा विक्रेयविक्रयः ॥
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविटपतनं स्मृतम् ॥२०॥

दानलेना, पढ़ाना, निषिद्ध वस्तुका खरीदना और बेचना वा यज्ञ कराना इन चारों कर्मों के करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होते हैं ॥२०॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्रयहेण शूदो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥२१॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवण के बेचने से तत्काल पतित होता है और दूध के बेचने से भी तीन दिन में शुद्र के समान हो जाता है ॥२१॥

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥
तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्त ददंडवत् ॥२२॥

व्रत और अध्ययन से शून्य ब्राह्मण जिस ग्राम में भिक्षा मांगकर जीवन धारण करते हैं राजा उस ग्राम को अर्थात् उस ग्राम के आवृत और निरक्षर ब्राह्मणों के पालने वाले नगर वासियों को चोर को पोषण करनेवाले के दंड के तुल्य दंड देना चाहिए ॥२२॥

विद्वद्भोज्यमविद्वासो येषु राष्टेषु भुंजते ।
तेऽवनावृष्टिमिच्छंति महद्वा जायते भयम् ॥२३॥

जिस राज्य में पंडितों के भोगने योग्य वस्तु को मूर्ख भोगते हैं, वहाँ अनावृष्टि वा अन्य किसी प्रकार का महाभय उपस्थित होता है ॥२३॥

ब्राह्मणान्वेदविदुपः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥
तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान्पूजयेन्नृपः ॥२४॥

जिस राज्य में राजा वेद के जाननेवाले और सम्पूर्ण शस्त्र में कुशलः ऐसे ब्राह्मणों का आदर करता है, उस स्थान पर सर्वदा सुवृष्टि होतीहै ॥२४॥

त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोमयः॥
एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥२५॥

स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल यह तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम यह तीनों वेद ब्रह्मचर्य,गृह्स्थ,वानप्रस्थ और संन्यास यह चारों आश्रम; दक्षिणामि, गार्हपत और आहवनीय यह तीनों अग्नि इन सब की रक्षा के निमित्त विधाता ने ब्राह्मणों की सृष्टि की है ॥२५॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वति ते द्विजाः ॥
दिव्यवर्पसहस्राणि स्वर्गलोक महीयते ॥२६॥

जिस राजा के राज्य में ब्राह्मण मौन का अवलम्बन कर प्रात:काल और सांय काल के समय सन्ध्यावन्दन करते हैं, वह राजा दिव्य सहस्त्र वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥२६॥

य एवं कुरुते राजा गुणदोपपरीक्षणम् ॥
यश:स्वर्ग नृपत्वं च पुनः कोशं व सोजयेत् ॥२७॥

जो राजा चारों वक्त के उक्त धर्म को विचारकर उनके गुण दोष का विचार करता है, उसके राज्य की दृढ़ता और कोश (खजाने) का संचय होता है, और उसको स्वर्ग प्राप्त होता है ॥२५॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽथिपु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥२८॥

दुष्टों का दमन और श्रेष्ठों का पालन, न्याय के अनुमार धन का संग्रह करना, विचार के निमित्त आये हुए आर्थियों पर पक्षपात का न करना और सब प्रकार से राज्य की रक्षा करना यह पांच राजाओं के यज्ञ अर्थात् आवश्यक कर्म है ॥२८॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्रामुवतीह पार्थिवाः ॥
नतुऋतुसहस्रेण प्रामुवंति द्विजोत्तमाः ॥२९॥

राजा इस प्रकार से प्रजापालन करके जैसे पुण्य को प्राप्त करता है, ब्राह्मण हजार २ यज्ञ करके भी वैसे पुण्य को नहीं प्राप्त कर सक्ते ॥२९॥

अलाभे देवखातानां ह्रदेषु सरसीषु च ॥
उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारैक्ये स्नानमाचरेत् ॥३०॥

देवताओं के तीर्थ अथवा जलाशयों के न मिलनेपर हौद अथवा सरोवर में स्नान करे, दूसरे जलाशय (तलाव आदि के होने पर चार मट्टीक पिंड बाहर निकालकर फिर उसमें स्नान करे ॥३०॥

वसा शुक्रेस्मृमृङ्ग मज्जा मूत्रं विट् कर्णविण्नखाः॥
श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदोद्धादैशते तृणां मलाः ॥३१॥

मेद्, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कान का मल, नख, श्लेष्मा, अस्थि, नेत्रों का मल, पसीना यह बारह मनुष्यों के मल हैं ॥३१॥

षण्णां षण्णां क्रमेणव शुद्विरुक्ता मनीषिभिः।
मृदारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषां तु वारिणा ॥३२॥

उनमें से मट्टी और जल से तो प्रथम के छहों मलों की शुद्धि होती है और केवल जल से शेष छह मलों की शुद्धि होना पंडितों ने कहा है ॥ ३२॥

शौचमंगलानायासा:अनसूयाऽस्पृहांदमः॥
लक्षणानि च विप्रस्य तथादानं दयापि च ॥३३॥

शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान, और दया यह ब्राह्मणों के लक्षण हैं ॥३३॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिदितः ॥
आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥३४॥

अभक्ष्य वस्तु का त्याग, श्रेष्ठ का संसर्ग, और शास्त्र में कहे हुए अन्यान्य आचारों के पालन करने का नाम शौच है ॥३४॥

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥
एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥३५॥

उत्तम कर्मों का आचरण और निन्दित कर्मों का त्याग करना इसी को धर्म के जानने वाले ऋषियों ने मंगल कहा है ॥३५॥

शरीरं पीज्यते येन शुभेन शुभेन चा॥
अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥३६॥

शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो जिससे शरीर को ग्लानि होती हो उसे अत्यन्तं न करै उसका नाम अनायास है ॥३६॥

न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥
न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥३७॥

गुणवान् मनुष्यों के गुणों को नष्ट न करना और दूसरे के गुणों की प्रशंसा करना दूसरे के दोषों को देखकर उनका उपहास न करना इसी का नाम अनसूया है ॥३७॥

यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥
न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीतिता ॥३८॥

आवश्यकीय सम्पूर्ण वस्तुओं से जो कुछ भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना और पराई स्त्री की अभिलाषा न करना इसी का नाम अस्पृहा है। ॥३८॥

बाह्य आध्यात्मि के वापि दुःख उत्पादित परैः॥
न कुप्यति न चाहंति दम इत्यभिधीयते ॥३९॥

कोई मनुष्य यदि वाह्य वा मानसिक दुःख उत्पन्न करै तो उस्के ऊपर क्रोध अथवा उसकी हिंसा न करने का नाम दम है ॥३९॥

अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ।
स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥४०॥

किश्चित् प्राप्ति के होनेपर भी उसमें से थोडा थोडा प्रतिदिनं प्रसन्न मन से दूसरे को देना इसका नाम दान है॥४०॥

परस्मिन्बंधुवर्ग वा मित्रे देष्ये रिपौ तथा ॥
आत्मवर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥४१॥

दूसरे के प्रति, माता पिता आदि अपने कुटुम्बियों के प्रति, मित्रों के प्रति, वैरकारी के प्रति और अपने शत्रु के प्रति समान व्यवहार करना इसी का नाम दया है। ॥४१॥

यश्चैतैलक्षणैयुर्क्तो युक्तो गृहस्थोपि भवेद्विजः ॥
स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥४२॥

जो ब्राह्मण गृहस्थ होकर भी इन सब लक्षणोंसे भूषित है वह उत्तम स्थान को प्राप्त करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता ॥४२॥

इष्टापूर्त च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः ॥
इष्टेन लभते स्वर्ग पूर्ते मोक्षो विधीयते ॥४३॥

इष्टकर्म और पूर्तकर्म ये उभयविध कर्म ब्राह्मण के ही यत्न से करने इष्टकर्म से स्वर्ग प्राप्त होता है और पूर्तकर्म से मोक्ष मिलता है ॥४३॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥
आतिथ्य वैश्वदेवश्च इष्ट मित्यभिधीयते ॥४४॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्यमें तत्परता, वेद की आज्ञाका पालन, अतिथियों का सत्कार और वैश्वदेव इनका नाम इष्ट है ॥४४॥

वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥४५॥

बावड़ी, कूप, तालाब इत्यादि जलाशयों का बनाना, देवताओं के मंदिर को प्रतिष्ठा, अन्नदान और बगीचों का लगाना इसका नाम पूर्त है ॥४५॥

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्य धर्मसाधने।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पृते धर्मे न वैदिके ॥४६॥

इस इष्ट और पूर्त कार्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को समान अधिकार है, यद्यपि शुद्र भी पूर्त कार्य में अधिकारी है, परन्तु उसके अन्तर्गत जो वैदिक कर्म है उसका अधिकार, उसे नहीं है। ॥४६॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन ॥१७॥

बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा यमों का सेवन करे, नियम का अनुष्ठान यथासमय में किया जाता है सर्वदा नहीं, और जो यमों का त्याग कर केवल नियम ही करताहै तो वह पतित होता है ॥४७॥

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥
प्रीतिः प्रसादो माधुर्य मार्दवं च यमा दश ॥४८॥

अक्रूरता, क्षमा, सत्यवादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता इन दसों का नाम यम है ॥४८॥

शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्य निग्रहः।

व्रतमौनोपवासं च स्वानं च नियमा दश ॥४९॥

शौच, यज्ञ का अनुष्ठान, तपस्या, अर्थात वेद का पढ़ना, विधि रहित रति का त्याग, व्रत, मौन, उपवास और स्नान यह दस नियम है ॥४९॥

प्रतिनिधि कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जति॥
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः॥५०॥

कुशा की प्रतिमा को लेकर तीर्थ के जल में स्नान करें, उसने उस मूर्ति को जिसके आशय से जल में स्नान कराया है, वह आठवां हिस्सा पुण्य का प्राप्त करता है ॥५०॥

मातरं पितरं वापि भ्रातरं सहृदं गुरुम् ॥
यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत् ॥५१॥

माता, पिता, भ्राता, मित्र, और गुरु के पुण्य की इच्छा से जो स्नान करते हैं, वह उस स्नान के बारहवें अंश के फल को प्राप्त करते हैं। ॥५१॥

अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥
पिंडोदकक्रियातोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥५२॥

जिस मनुष्य के पुत्र नहीं है वह पुत्र के प्रतिनिधि को ग्रहण करे, कारण कि श्राद्धतर्पणादि कार्य बिना पुत्र के नहीं होते ॥५२॥

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम् ॥
ऋणमस्मिन्सनयति अमृतत्वं । च गच्छति ॥५३॥

पिता यदि उत्पन्न हुए पुत्र का मुख जीवित अवस्था में एकवार भी देखले तो वह पितरों के ऋण से मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥५३॥

जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता।
तदहि शुद्धि मामोत नरकात्रायते हि सः ॥५४॥

पुत्र के पृथ्वी पर उत्पन्न होते ही मनुष्य पितरों के ऋण से छूट जाता है, और उसी दिन वह शुद्ध होता है कारण कि यह पुत्र नरक से उद्धार करता है ॥५४॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा योकोपि गयां व्रजेत् ॥
यजेत चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृनेत् ॥५५॥

बहुत से पुत्रों की इच्छा करनी उचित है कारण कि यदि उनमे से कोई एक भी पुत्र गया जी जाय, कोई अश्वमेध यज्ञ को करै और कोई नील वृष का उत्सर्ग करै ॥५५॥

कांक्षति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥

नरक से भयभीत हुए पितृगण "जो पुत्र गया को जायगा वही हमारे उद्धार का करनेवाला होगा यह विचार कर ऐसे पुत्र की इच्छा करते हैं ॥५६॥

फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥
गयशीर्ष पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥५७॥

फल्गु नदी में स्नान करके गयासुर के मस्तक पर चरण धर गया के गदाधर देवता का दर्शन करने से मनुष्य ब्रह्महत्या पाप से भी छूटजाताहै ॥५७॥

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेपितृदेवताः ॥
अक्षयाल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥५८॥

जो मनुष्य महानदी (गंगाआदि) में स्नान आचमन कर देवता और पितरोंका तर्पण करते हैं, वही अक्षय लोक को प्राप्त होकर वंश का उद्धार करते हैं ॥५८॥

शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ॥
आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ।।

पवित्र भोजन और भोज्य हीन देश में, शंका के स्थान में, प्राणी रक्षा के अर्थ जिसकी पवित्रता में संदेह हे ऐसे द्रव्यों के भोजन करने से उसका जो प्रायश्चित है उसे मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥५९॥

अक्षारलवणं रौक्ष पिबेद्राह्मी सुवर्चलाम् ॥
त्रिरात्रं शंखपुष्पी वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥६०॥

प्रथमतः ब्राह्मण अपने शुद्धि के अर्थ खारी नमक से रहित अर्थान् नृखा अन्न और कांति की देनेवाली ब्राह्मी वा शंखपुष्पी औषधी को दूध के साथ मिलाकर तीन रात तक पिये ॥६०॥

मद्यभांडे द्विजः कश्चिदज्ञानापिवते जलम् ॥
प्रायश्चित्तं कयं तस्य मुच्यते केन कर्मणी ॥६१॥

अदि कोई ब्राह्मण बिना जाने हुए मदिरा पात्र में जलपान कर ले तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार होता है और उस मनुष्य को शुद्धि किस कर्म के अनुष्ठान करने से होती है ? ॥६१॥

पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पनान्युदुंवरम् ॥
क्वायित्वा पिबदापत्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥६२॥

उत्तर ढाक के पत्ते, बेल के पत्ते, कुश, कमल के पत्ते, गूलर के पत्ते इन काढ़ा बना कर तीन दिन तक पान करे तब शुद्ध होता है ॥६२॥

सायं प्रातस्तु यः संध्यां प्रमादाद्विकमेत्मकृत् ।।
गायत्र्यास्तु सहस्त्रं हि जपेवा समाहितः ॥६३॥

जो मनुष्य असावधानता से एकवार प्रातःकाल वा मध्यकाल की संध्या न करे तो दुसरे दिन स्नान करने के उपरान्त एकाग्रचित्त हो एक सहस्त्र बार गायत्री का जप करे ॥६३॥

रोगाक्रांतोऽथवाज्यासात स्थित स्नानपाद्बहिः ॥
ब्रह्मकूर्चे चरेद्भक्तया दानं दत्वा विशुद्धयति ॥६४॥

जो मनुष्य रोग से व्याकुल हो या अत्यन्त परिश्रम करने स्नान और जप न कर सके वह भक्तिपूर्वक 'ब्रह्मकूर्च" और यत्किंचित दान करके शुद्ध होती है ॥६४॥

गवां शृंगोदके नात्या महानद्यपसंगमे ॥
समुद्रदर्शन चापि व्यालदष्टः शुचिर्भवत् ॥६५॥

सर्प से काटा हुआ मनुष्य गौवों के सींगों के जल में अथवा गंगा यमुना संगम के स्थान में स्नान करके फिर समुद्र का दर्शन करने से शुद्ध होता है ॥६५॥

वृकश्वानश्रगालैन्तु यदि दृष्टस्तु ब्राह्मणः ॥
हिर्णयोदकसंमिश्र धृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥६६॥

जिस ब्राह्मण को वृक-भेडिया, कुत्ता अथवा गीदड ने काटा हो वह सुवर्ण से शुद्ध हुए जल के साथ घृत का भोजन करे तब वह शुद्ध होता है ॥६६॥

ब्राह्मणी तु शुना दृष्टा जंबुकेन वृकेणं वा ॥
उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥६७॥

परन्तु जिस ब्राह्मणी को कुत्ता, गीदड, भेडिया आदि हिंसक जन्तुओं ने काटाहो तो वह उदय हुए ग्रह नक्षत्रों के देखने से शीघ्र ही शुद्ध हो जाती है ॥६७॥

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥
सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेष समापयेत् ॥६८॥

यदि व्रती ब्राह्मण को कुत्ते ने काटा हो तो वह तीन दिन तक उपवास करै और आधा पका हुआ जौ अथवा कुलथी का भोजनकर व्रत की समाप्ति करे ॥६८॥

मोहात्ममादासंलोभाद्व्रतभंगंतु कारयेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धयेत पुनरेव व्रती भवेत् ॥६९॥

मोह अथवा असावधानता से या लोभ के वश से जिसने व्रतभंग कर दिया है वह तीन दिन तक उपवास करने से शुद्ध होता है और फिर व्रतको धारण करै॥६९॥

ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥
दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्धयति ॥७०॥

यदि कोई ब्राह्मण अज्ञान से दूसरे ब्राह्मण का जूठा भोजन करले तो वह दो दिन गायत्री जप करने से शुद्ध होता है ॥७०॥

क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो दिजः ॥
त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥७१॥

यदि ब्राह्मण बिना जाने हुए क्षत्रिय अथवा वैश्य का जूठा अन्न भोजन करले तो वह तीन दिनतक गायत्री का जप करने से शुद्ध होता है ॥७१॥

अभोज्यानं तु भुक्तानं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ॥
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिवेत् ॥७२॥

भक्षण न करने योग्य अन्न को, पूर्वभुक्त से अवशिष्ट अन्न को, स्त्री और शूद्र के जूठे अन्न को, या भक्षण न करने योग्य मांस का जो मनुष्यं भोजन करता है; वह सात दिन तक जौकी लपसी (दलिया) को पिये तो शुद्ध होता है। ॥७२॥

असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥
तंस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥७३॥

जो जाति स्पर्श करनेके योग्य नहीं है उसके स्पर्श करनेवाले द्विज को स्नान करना योग्य है, जिसने उसका जूठा खाया है उसे छः महीने तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥ ७३॥

अज्ञानात्माश्य विणमूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥
पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥७४॥

जिस ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य ने विष्ठा, मूत्र, वा सुरा जिसमें मिली हो अज्ञानवश खाई है, तो वह यज्ञोपवीत इत्यादि के पुनः संस्कार कराने पर शुद्ध होता है। ॥७४॥

वपनं मेखला दंड भैत्यचर्य व्रतानि च ॥
. निवर्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्माण ॥७५॥

उन द्विजातियोंको पुनःसंस्कार के समय मस्तक मुंडवाने, मेखला के धारण करने, भिक्षा मांगने और ब्रह्मचर्य धारण करने की आवश्यकता नहीं है। ॥७५॥

गृहशुद्धि प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥
प्रत्याज्यं मृन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥७६॥

जिस घर में मुर्दा पडा है उसकी शुद्धि किस प्रकार होतीहै सो मैं कहता हूँ। उस घर के मट्टी के पात्र और सिद्ध हुए अन्न को त्याग देना चाहिए। ॥७६॥

गृहानिष्क्रम्य तत्सर्व गोमयेनोपलेपयेत् ॥
गोमयेनोप लिप्याथ छागेनाघ्रापयेत्पुनः ॥७७॥

उन सब वस्तुओं को घर से निकालकर फिर गोबर से घर को लीपना चाहिए और उसके पश्च्यात बकरीके गोवर से धूपित करना चाहिए ॥७७॥

ब्राझैमत्रैस्तु घृतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥
तेनैवाभ्युक्ष्य तद्देश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥७८॥

ब्राह्म मंत्र को पढकर सुवर्ण और कुशाओं से जल को घर में छिडक कर तब उस गृह की शुद्धि होने में कोई संदेह नहीं है। ॥७८॥

राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलादिचलितो द्विजः ।
पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चास्कृच्छत्र यं चरेत् ॥७९॥

राजा अथवा अंत्यज चांडाल जिस किसी ब्राह्मण को बलपूर्वक विचलित करें अर्थात श्रेष्ठ मार्ग से अलग करके अभक्ष्य वस्तु का भोजन करवाए अथवा असत् मार्ग में प्रवृत करे तो उस ब्राह्मण को तीन प्राजा:पत्य करके पुन: संस्कार करना चाहिए ॥७९॥

शुंना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥
तदुच्छिष्टं तु संपाश्य यत्नेन कृच्छमाचरेत् ॥८०॥

जिसको कुत्ते ने स्पर्श किया हो वह स्नान करने पर और जिसने जूठा भोजन किया हो तो वह यत्नपूर्वक कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्ध होता है ॥१०॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सुतकस्य विनिर्णयम् ॥
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥८१॥

इसके पीछे सूतक अर्थात् आशौच के विषयका वर्णन करता हूँ और तत्पश्च्यत प्रायश्चित्तों का वर्णन करूंगा ॥८१॥

एकाहाच्छुद्वयते विप्रो योनिवेदसमन्वितः ॥
त्रयहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनै ॥८२॥

जो अग्नि और वेदकर के समन्वित (युक्त) हैं वह एक ही दिन में, जो केवल वेदपाठी हैं वह तीनः दिन में; और जो अग्निहोत्री और वेदपाठी नहीं है ऐसे निर्गुण ब्राह्मण दस दिन में शुद्ध होते हैं। ॥८२॥

व्रातिनः शास्त्रपूतस्य आहितामेस्तथैव च ॥
राज्ञां तु सुतक नास्ति यस्यचेच्छंति ब्राह्मणाः॥८३॥

शास्त्र के अनुसार व्रत धारण करने वाला, अग्निहोत्र करनेवाला, और राजा एवं ब्राह्मण जिसको अशौच होनेकी इच्छा नहीं करते, इन सब

मनुष्यों के यहां अपने अपने कर्म के अनुसार अशौच नहीं होता ॥८३॥

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः॥
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ॥८४॥

ब्राह्मण दस दिन के पश्च्यात, क्षत्रिय बारह दिन के उपरान्त, और वैश्य पंद्रह दिन के उपरान्त, शूद्र एक महीने के बाद शुद्ध होता है ॥८४॥

सपिंडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः।
पिंडांश्चोदकदानं च शावशौचं तथानु गम् ॥८५॥

एक वंशमें उत्पन्न होकर अपने से सात पीढियों तक सपिंड संज्ञा होती है और इनको ही पिंड प्रदान और तर्पण किया जाता है, पूर्वोक्त मरणाशौच भी उसका अनुगामी है, अर्थात् सपिंडों के निमित्त करना योग्य है ॥८५॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥
षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात्सप्तमे व्यहमेव वा ॥८६॥

परन्तु सूतिका के अशौच में चार पीढी तक, दश रात्रि, और पांचवी पीढी में छह दिन तक, और छठी पीढी में तीन रात तक, और सातवी में तीन दिन तक ही अशौच रहता है। ॥८६॥

मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भतरि यौनिकम् ॥८७॥

मरण के अशौच दासी और अनुलोमी (पतिसे नीच वर्ण की) स्त्रियों को पति के समान अशौच होता है। स्वामी के मरने के उपरान्त जिस वंश में उसका जन्म हुआथा उस वंश के अनुसार ही सूतक माना जायगा ॥८७॥

शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥
चतुर्थे सप्तभिक्षं स्यादेष शावविधिः स्मृतः॥ ८८॥

जिस मनुष्य ने मृतक मनुष्य का स्पर्श किया हो, उस मृतक शरीर के छूनेवाले मनुष्य को जो स्पर्श करता है और उसको जो, छूता है वह उसः समय पहने हुए वस्त्र को उतारे बिना ही सचैल स्नान करे, और शव स्पृष्ट चौथा अर्थात् तीसरे स्पर्शी को छूनेवाला सात घरों की भिक्षा मांग कर खाय, यही शवस्पर्श में विधि कही गई है। ॥८८॥

एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकमोजिनाम् ॥
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ॥८९॥

सौत के पुत्र का जन्म अथवा उसकी मृत्यु होनेपर एक समय में ब्याई हुई, एक घर में अन्न का खाने वाली असवर्णा माताओं को पति को समान सूतक होगा, परन्तु यदि यह सब पृथक् रहती हों या अलग

अलग ब्याही गई हों तो अपनी अपनी जातिके अनुसार अशौच होगा ॥८९॥

उष्टीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतस्तके ॥
पाचकानं नवश्राद्धं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥९०॥

ऊँटनी, या भेड का दूध, अशौचान्न, और रसोइये ब्रामण का अन्न और जो श्राद्ध का अन्न भोजन करता है उसको चांद्रायण व्रत करना चाहिए ॥९०॥

सूतकानमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥९१॥

जो मनुष्य अधर्म के निमित्त अर्थात् आज संध्या इत्यादि कर्म नहीं करना होगा ऐसा विचार कर, अशौच अन्न को खाता है, उसे तीन दिन तक उपवास करना चाहिए एक दिन जल में ही निवास करना चाहिए ॥९१॥

महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ।
होमं तत्र प्रकुति शुष्कानेन फलेन वा ॥९२॥

अग्निहोत्री मनुष्य दोनों ही अशौच में महायज्ञ (काम्ययज्ञ)को न करे, परन्तु शुष्क अन्न अथवा फल से नित्य का होम कर ॥९२॥

बालस्वंतर्दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥
सद्य एव विशुद्धिः स्यान प्रेतं नैव सूतकम् ॥९३॥

जन्म होने के उपरान्त दस दिन के बीच में ही जिस बालक की मृत्यु हो जाय उसकी शुद्धि तत्काल ही हो जाती है, उसको जन्म का सूतक नहीं होता ॥९३॥

कृतचूढे प्रकुर्वीत उदकं पिंडमेव च ॥
स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥९४॥

जो मूडन (चौल) होने के पीछे बालक मर जाय तो नाम और स्वधा का उचारण करके तर्पण और पिंड उसका करना होगा ॥९४॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैत्र मंत्र पूर्वकृत तथा ।
यज्ञ विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥९५॥

ब्रह्मचारी और संन्यासी को और अशौच से पहले संकल्प किये हुए मंत्र के जप में और यज्ञ में तथा जिस विवाह में वृद्धिश्राद्ध तक हो गया है, उस विवाह में तत्काल ही अशौच निवृत्ति हो जाती है। ॥९५॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके।
पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोपश्चात्रिरब्रवीत् ॥९६॥

यदि विवाह, उत्सव और यज्ञ के बीच में अशौच हो जाय तो उस पूर्वसंकल्पित कार्य के करने में कोई दोष नहीं होता, यह अत्रि ऋषि का वचन है। ॥९६॥

मृतसञ्जननोर्द्ध तु सूतकादौ विधीयते ॥
स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाञ्चेन्न संस्पृशेत् ॥९७॥'

मरे हुए बालकके जन्म होनेके पीछे जो अशौच होताहै उसमें आचमन के द्वारा ब्राह्मणों के अंग का स्पर्श होते ही अशौच नहीं रहता; यदि सुतिका को स्पर्श न किया हो तो ॥९७॥

पंचमेहनि विज्ञेयं संस्पर्श क्षत्रियस्य तु ॥
सप्तमेहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥९८॥

क्षत्रिय का पांच दिन में, वैश्य का सात दिन में, और शूद्र का दस दिन दस दिन में स्पर्श होता है, यह बुद्धिमानों को जानना योग्य है ॥९८॥

दशमेहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥
मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात्सूत के मृतके तथा ॥९९॥

और शूद्र के जन्म मरण में एक मास तक अशौच होता है, बुद्धिमानों को ऐसा जानना योग्य है। ॥९९॥

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥

चिरकाल तक रोगी, कंजूस, जो सर्वदा ऋणी रहे,धर्मकार्य से रहित, मूर्ख, और जो स्त्री में अत्यन्त आसक्त हो ॥१००॥

व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥
श्राद्धत्याग विहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥१०१॥

और जिसका चित्त जुए में अत्यन्त लगा हो, सर्वदा पराधीनता में रहनेवाला और श्राद्धदान रहित मनुष्य के दग्ध होकर भस्म होने तक ही अशौच है ॥११॥

द्वे कृच्छे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रे मातुः स्यापितुः सांतपनं कृतम् ॥१०२॥

परिविित्ति मनुष्य दो प्राजापत्य को करे तो वह शुद्ध होताहै, और परिवेत्ता से विवाहिता कन्या को एक प्राजापत्य करना चाहिए और कन्या की माता को कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करना चाहिए और कन्या के पिता को सान्तपन व्रत करना चाहिये ॥ १०२ ॥

कुब्जवामनषढेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥१०३॥

बडा भाई यदि कुबडा, बौना, पागल, जन्म से अंधा, जन्म से बहरा, गूंगा, जनसमाज में निंदित, तोतला, और वेद के पढने में असमर्थ हो तो छोटे भाई का प्रथम विवाह हो जानेपर उसे दोष नहीं लगेगा ॥ १०३॥

क्लीवे देशांतरस्थे च पतिते ब्रजितेपि वा ॥
योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥१०४॥

बडा भाई यदि नपुंसक, विदेशी, संन्यासी, पतित और योगशास्त्र में रत हो तो उसे भी परिवेदन में दोष नहीं होगा ॥ १०४॥

पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥
अग्निहोत्राधिकार्यस्ति न दोषः परिवेदने ॥१०५॥

जिस मनुष्य का पिता, पितामह, बड़ा भाई यह अग्निहोत्र के अधिकारी हुए हैं, पीछे यह मनुष्य प्रायश्चित्त करके अग्नि को ग्रहण करे तो बडे भाई से विवाह करने में दोषी नहीं होगा ॥१०५॥

भार्यामरणपक्षे या देशांतरगतेपि वा।
अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकसंयुगे ॥१०६॥

स्त्री के मरनेपर अथवा दूरदेश में जाने पर अथवा पातक लगने पर पुत्र अग्नि होत्रादि का 'अधिकारी होताहै ॥१०६॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा न नित्यं रोगसमन्वितः ॥
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥१०७॥

यदि ज्येष्ठ भाई की मृत्यु हो गई हो, अथवा वह सर्वदा रोगी रहता हो तो उसकी आज्ञा लेकर छोटा भाई शंख ऋषि के वचनके अनुसार अपना विवाह करले ॥ १०७॥

नाग्नयः परिविंदति न वेदा न तपांसिच ॥
नच श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैवाभ्यनुज्ञया ॥१०८॥

ज्येष्ठ भाई की आज्ञा के बिना छोटा भाई अग्निहोत्र नहीं कर सकता, वेद नहीं पढ सकता, तप नहीं कर सकता, और न श्राद्ध ही कर सकताहै ॥१०८॥

तस्मादर्म सदा कुर्याच्श्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिक काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥१०९॥

जो श्रुति स्मृति में कहे हुए नित्य संध्या आदि तथा नमित्तिक तकर्म आदि और जो स्वर्ग के देनेवाले काम्य कर्म हैं, उनका अनुष्ठान कर धर्म का संचय करै ॥१०९॥

एकैकं वर्द्धेयन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ॥
अमावास्यां न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥११०॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को केवल एक ही ग्रास खाय, इस दिन से प्रारंभ कर पूर्णिमा तक एक ग्रास को बढाता जाय, अर्थात पूर्णिमा तक तिथि की संख्या के अनुसार ग्रासों की संख्या खानी चाहिए और कृष्णपक्ष को प्रतिपदा से प्रतिदिन एक एक ग्रास को कम करे और अमावस्या को उपवास करे, ऐसा करने से चान्द्रायण व्रत होताहै; यह चान्द्रायण व्रत की विधि है ॥११०॥

एकैकं ग्रासमभीयात्रयहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥
त्र्यहं परं च नाभीयादतिकृच्छ्रू तदुच्यते ।
इत्येतत्कथितं पूर्वैमहापातकनाशनम् ॥१११ ॥

पहले तीन दिन तक एक एक ग्रास का भोजन करे और अगले तीन दिन में सर्वथा भोजन न करे इसे अतिकृच्छ्र कहते हैं। पहले आचार्योंने इस व्रतको ही महापातकों का नाश करने वाला कहा है ॥१११॥

वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥
न स्पृशंतीह पापानि महापातकनान्यपि ॥११२॥

वेद के अभ्यास में रत, क्षमाशील, और महायज्ञ के करने वाले मनुष्य को ब्रह्महत्यादि पातको का पाप भी स्पर्श नहीं कर सकता। ॥११२॥

वायुभक्षो दिवा तिष्ठेदात्रिं नीवाप्सु सूर्यदृक् ॥
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुदिब्रह्मवधादृते ॥११३॥

वायुका पान कर दिन में सूर्य की ओर देखता रहे और रात्रि में जल में निवास कर सहस्रवार गायत्री का जप करने से ब्रह्महत्या के अतिरिक्त सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥११३॥

पद्मोदंबरविल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रे तदुच्यते ॥११४॥

कमलपत्र, गूलर के पत्ते, बेलपत्र, कुश, पीपल के पत्ते और ढाक के पत्ते इन सबका काथ बना कर इस जल का पान करे इसका "पर्णकृच्छ्र' नाम कहा है ॥११४॥

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्धतम् ॥
जग्ध्वा परेयुपवसेत्कृच्छ्रे सांतपनं स्मृतम् ॥११५॥

गाय का दूध, गोमूत्र, गाय के दूध की दही, गाय का गोबर, और घी, इस पंचगव्य का पानकर, दूसरे दिन निर्जल उपवास करे, इसको "सान्तपनकृच्छ्रव्रत" कहते हैं। ॥११५॥

पृथक्सांतपनैद्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥
सप्ताहेन तु कृच्छोयं महासांतपनं स्मृतम् ॥११६॥

ऊपर कहे हुए पंचगव्य में से एक एक पदार्थ को एक एक दिन (किसी दिन दूध किसी दिन दही आदि) इस प्रकार से पाँच दिन भोजन करे, छठे दिन के उपरान्त सातवें दिन उपवास करे, इस व्रत को "महासान्तपनकृच्छ्र' कहते हैं ॥११६॥

त्र्यहं सायं व्यहं प्रातख्यहं मुक्त त्वयाचितम् ॥
व्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजा पत्यो विधिः स्मृतः ॥११७॥

तीन दिन सायंकाल को और तीन दिन प्रातःकाल को, और तीन दिन बिना मांगे हुए जो मिल जाय ऐसे भोजन को करे, इसके पीछे तीन दिन तक उपवास करे, इन बारह दिनों में होने वाले व्रत को "प्राजापत्य" कहते हैं ॥११७॥

सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः॥
अयाचितैश्चतुविशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥११८॥

इस व्रत में सायंकाल के समय बारह ग्रास, और प्रातःकाल के समय में पंद्रह ग्रास, और बिना मांगे हुए चौबीस ग्रास खाए, इसके पीछे तीन दिन तक उपवास करे ॥११८॥

कुक्कुटांडप्रमाणं स्यांद्याव दास्य विशेन्मुखे ॥
एतनासं विजानीयाच्छद्धयर्थं कायशोधनम् ।। ११९॥

यह सभी को जानना उचित है कि इस प्रायश्चित के, अंग से उत्पन्न हुए शरीर की शुद्धि करने वाले भोजन का ग्रास मुरगे के अंडे की समान हो या जितना ग्रास उसके मुख में स्वच्छन्दता से जा सके उसके निमित्त वही ग्रास श्रेष्ठ है। ॥११९॥

त्र्यहसुष्णं पिवेदापस्यहमुष्णं पिवेत्पयः ॥
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रये ॥१२०॥

षट्पलानि पिबेदापस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ॥
पलमेकं तु वै सर्पित्तप्तकृच्छ्रे विधीयते ॥१२१॥ .

तीन दिन छः पल परिमित तनक गरम जल पिये; और तीन दिन तीन पल परिमित गरम दूध पिये, और तीन दिन तक एक पलपरिमित गरम घृत का पान करै, और. तीन दिन तक वायु भक्षण करै, ऐसा अनुष्ठान करनेसे "तप्तकृच्छ्र" व्रत होता है ॥१२०-१२१॥

त्र्यह तु दधिना भुक्ते त्र्यहं भुंक्त च सर्पिषा॥
क्षीरेण तु त्र्यहं भुक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥१२२॥

त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिपा ॥
एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥१२३॥

तीन दिन तक तीन पल परिमित दही का, और तीन दिन तक एक पल परिमित घृत का और तीन दिन तक तीन पल परिमित घृत का, पानकरै, और तीन दिन तक वायु का भक्षण करे, इसीको " वैदिककृच्छ्र' व्रत कहते हैं ॥१२२-१२३॥

एक भुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रू प्रकीर्तितम् ॥१२४॥

एक दिन में केवल एक ही बार भोजन कर, एक दिन रात्रि को एक दिन बिना मांगे हुए भोजन करे, और एक दिन उपवास करे, इस प्रकार से "पादकृच्छ्र' व्रत होताहै ॥१२४॥

कृच्छ्रातिकृच्छ पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥१२५॥

और इक्कीस दिन तक केवल दूध ही को पीकर रहै, इस प्रकार से "कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत होता है; और बारह दिन तक उपवास कर इसको "पराक" व्रत कहते हैं। ॥१२५॥

पिण्याकश्चामतकांबुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥
एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छूः प्रकीर्तितः ॥१२६॥

चार दिन तक बरावर प्रतिदिन खल, कच्चा मट्ठा, जल, सत्तू, इनका एक २ ग्रास भोजन करे और एक दिन उपवास कर इस व्रत का नाम "सौम्यकृच्छ्र' कहा है ॥१२६॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पंचदशाहिकः ॥१२७॥

इन पाचों मे से क्रमानुसार एक एक का तीन तीन दिन तक आवृत्ति करने से पंद्रह दिन में जो व्रत होता है उसी का नाम "तुलापुरुष" है ॥१२७॥

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिवत् ॥
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥१२८॥

दुहा हुआ कपिलागऊ के स्वाभाविक गरम दूध को जो मनुष्य पीता है वह व्यासजी का बताया हुआ "कृच्छ्र" व्रत है, यह चाण्डाल को भी शुद्ध कर देता है ॥१२८॥

निशायां भोजनं चैव तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥
अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथो दितम् ॥१२९॥

दिन में अनाहार रहकर रात्रि में भोजन करनेका नाम "नक्तव्रत है, जिस पाप का प्रायश्चित्त नहीं कहा है उसका यह प्रायश्चित्त चान्द्रायण व्रत कहा है ॥१२९॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैदिगुणदक्षिणैः ॥
यत्फलं समवाप्रोति तथा कृच्छैस्तपोधनाः ॥१३०॥

हे तपस्वी मनुष्यो ! दुगनी दक्षिणा देकर अभिष्टोम आदि यज्ञ करने से जिस प्रकारका फल प्राप्त होता है पहले कहे गए कृ च्छके करने से भी उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है ॥१३०॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ।
शौचमुद्वार्यभिरतो गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥१३१॥

जो मनुष्य वेदके पढने में तत्पर, क्षमाशील, और धर्मशास्त्र को विचारकर उसके उपदेश के अनुसार शौच और आचार का पालन करतेहैं, वह गृहस्थी होने पर भी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। ॥१३१॥

उक्तमेताद्दीजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥१३२॥

इस प्रकार से यह द्विजातियों का धर्म कहा; इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणों से पतित होते हैं उसका वर्णन करता हूँ हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥१३२॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥१३३॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाचन, देवताओं की आराधना, यह छ: कर्म स्त्री शूद्रों को पतित करनेवाले हैं ॥१३३॥

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥१३४॥

जो स्त्री स्वामी के जीवित रहते हुए उपवास करके व्रत धारण करती है, वह स्त्री अपने स्वामी की आयु का हरण करती है; और अन्त में वह नरक को जाती है। ॥१३४॥

तीर्थ नार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरस्यापि विष्णो प्रयाति परमं पदम् ॥१३५॥

यदि स्त्री को तीर्थक स्नान करने की इच्छा है तो वह अपने पति के चरणोदक का पान करे, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवान के परम पद कैलास अथवा वैकुण्ठ को प्राप्त कर सकैगी। ॥१३५॥

जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥१३६॥

स्वामी की जीवित अवस्था में तथा मृत्यु की अवस्थामें स्त्री वामाङ्गी है; और पुरुष दाहनी ओर का भागी है। परन्तु श्राद्ध, यज्ञ, और विवाहके समय में स्त्री दहिनी ओर को ही बैठतीहै ॥१३६॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः॥
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥१३७॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा (बृहस्पति) ने इन स्त्रियों को शुद्धता दान की है; और अग्निने भी सम्पूर्ण शुद्धता दी है; इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र हैं ॥१३७॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्दिज उच्यते ॥
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रिय स्त्रिभिरेव च ॥१३८॥

ब्राह्मणके वंश में जन्म लेने से ब्राह्मण होता है, और जब उसका उपनयन संस्कार होता है तब उसको द्विज कहते हैं, विद्या से विप्रत्व प्राप्त होता है; और उक्त जन्म संस्कार और विद्या इन तीनों से "श्रोत्रिय पद का वाच्य होता है ॥१३८॥

वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थ च नियोधयेत् ।
तदासौ वेदवित्प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥

जो ब्राह्मण वेद शास्त्र को पढते और उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं उनको वेदवित् अर्थात वेद के. जाननेवाला कहा जाता है; उनके वचन पवित्रता प्रदान करते हैं। ॥१३९॥

एकोपि वेदविधर्म यं व्यवस्येद्विजोत्तमः ।
स ज्ञेयः परमो धर्मों नाज्ञानामयुतायुतैः ॥१४०॥

वेद का जानने वाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्म का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ धर्म है, और मूखों के सहस्रों यत्न करने पर भी वह धर्म नहीं होता ॥१४०॥

पावका इव दीप्यते जपहोमैद्विजोत्तमाः॥
प्रतिग्रहेण नश्यति वारिणा इव पावकः ॥१४१॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण जप होमादि के द्वारा अग्नि के समान दीप्तिमान हो जाते हैं; और जल से जिस प्रकार अग्नि के तेज का नाश होता है उसी प्रकार से जो ब्राह्मण प्रतिग्रह अर्थात् दान लेते हैं उनका तेज भी नष्ट हो जाताहै ॥१४१॥

तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैद्विजोत्तमाः ॥
नाशयंति हि विद्वांसो वायुमेंघानिवांबरे ॥१४२ ॥

जिस प्रकार से तीक्ष्ण पवन आकाश में स्थित सम्पूर्ण मेघों को छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकार से विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण भी उस प्रतिग्रह से उत्पन्न हुए दोषों को प्राणायाम से दूर कर देता है ॥१४२॥

भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ।
लक्ष्मीर्वलं यशस्तेज आयुश्चैव प्रहीयते ॥१४३ ॥

जो ब्राह्मण भोजन करनेके उपरान्त आचमन कर गीले हाथ रहता है अर्थात् तौलिये आदि से हाथ नहीं पौंछ लेता; उसके यहां लक्ष्मी कभी

निवास नहीं करती; और बल, तेज, यश, आयु इन सभी की हानि होतीहै ॥१४३॥

यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥
तच्चान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥१४४॥

जो मनुष्य भोजन के गृह में, भोजन के आसन पर स्थित होकर कुल्ला करता है; उसका अन्न भोजन करनेके योग्य नहीं है और जो यदि भोजन भी कर लिया है तो वह चांद्रायण व्रत करे ॥१४४॥

पात्रोपरि स्थिते पात्रे यस्तु स्थाप्य उपस्पृशेव॥
तच्चान्ननं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥१४५॥

और जो मनुष्य आसन पर स्थित पात्र के ऊपर पात्र रखकर उस पात्र के जल से आचमन करता है उसके अन्न का भी भोजन नहीं करना चाहिए और जो भोजन करेगा तो उसे चांद्रायण व्रत करना होगा ॥१४५॥

अश्रद्धया च यद्दत्तं विप्रेऽनौ दैविके ऋतौ ॥
न देवास्तृप्तिमायोति दातुर्भवति निष्फलम् ॥१४६॥

देवता के उद्देश्य करके जो यज्ञ किया जाता है उसमें श्रद्धारहित जो कुछ ब्राह्मण अथवा अग्नि में अर्पण किया जाता है; उसके देने से

देवता तृप्त नहीं होते किन्तु वह अन्नादिक प्रदान किये हुए भी निष्फल हो जाते हैं ॥१४६॥

हस्तं प्रक्षालयित्वा यः पिबेद्धक्का द्विजोत्तमः॥
तदन्नमसुरैर्मुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥१४७॥

जो द्विजों में उत्तम भोजन करने के अनन्तर हाथों को धुलाकर उसी शेष जल को पीते हैं उस श्राद्धकर्म के अन्न को पितरलोग स्वीकार नहीं करते; वह मानों राक्षसों को प्राप्त होता है और उसके पितर निराश होकर चले जाते हैं ॥१४७॥

नास्ति वेदात्परं श नास्ति मातुः परो गुरुः॥
नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥१४८॥

वेद से श्रेष्ठ और कोई शास्त्र नहीं है, माता से श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है, इस लोक और परलोक में दान की अपेक्षा उत्तम मित्र नहीं है। ॥१४८॥

अपात्रेष्वपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥
हव्यं देवा न गृहंति कव्यं च पितरस्तथा ॥१४९॥

परन्तु जो दान कुपात्र को दिया जाता है वह सात पीढी तक दग्ध करता है, अपात्र में दिया हुआ हव्य देवताओं के योग्य, कव्य पितरोंके योग्य, जो अन्न उसे देवता वा पितर ग्रहण नहीं करते ॥१४९॥

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥
श्वानविष्ठासमं भुंक्त दाता च नरकं व्रजेत् ॥१५०॥

लोहे के पात्र से जो अन्न दिया जाताहै वह अन्न सब प्रकार से भोजन करने वाले को विष्ठा के समान बरजने योग्य है, और उसका दाता नरक को जाताहै ॥१५०॥

पित्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥
न दद्यादामहस्तेन आयसेन कदा च न ॥१५१॥

बुद्धिमान मनुष्य पीतल अथवा लोहे के पात्र में रखकर अन्न को बाएं हाथ से कदापि न परोसे ॥१५१॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयोपितॄन् ।
अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेता नरकं च तौ ॥१५२॥

जो मनुष्य श्राद्ध में अपने पितरों की तृप्ति के अभिप्राय से मट्टी के पात्र में ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उस अन्न को देनेवाला और खानेवाला दोनों ही नरक को जातेहैं। ॥१५२॥

अभावे मृन्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैद्विर्जे: ॥
तेषां वचः प्रमाण स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥१५३॥

और जो अन्यान्य पात्र न मिले तो श्राद्धीय ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर मट्टी के पात्र में परोस दे; कारण कि, पवित्र ब्राह्मणों के सत्य असत्य सभी वचन प्रामाणिक हैं। ॥ १५३॥

सौवर्णायसतानेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥
भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षभुक्ते तु किल्विषम् ॥१५४॥

यदि संन्यासी को सुवर्ण के पात्र, लोहे के पात्र, चांदी, अथवा कांसे के पात्र में जो भिक्षा दी जाती है उसका धर्म नहीं होता; और उससे प्राप्त हुई भिक्षा को खानेवाला भिक्षु पाप का भोक्ता होताहै ॥१५४॥

न च कांस्येष्ठ भुंजीयादापद्यपि कदाचन ॥
मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥१५५॥

भिक्षुक कभी अधिक विपत्ति के आ जाने पर भी कांसे के पात्र में भोजन न करें क्योंकि जो संन्यासी कांसे के पात्र में भोजन करते हैं, उन्हें मल भक्षण का दोष लगता है। ॥१५५॥

कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृह स्थस्य तथैव च ॥
कांस्यभोजी यतिश्चैव प्रामुयात्किल्विषं तयोः ॥१५६॥

कांसे के पात्र की जो अपवित्रता है; और गृहस्थ में जो पाप है, कांसे के पात्र में भोजन करनेवाला भिक्षुक इन दोनों के पापों का अधिकारी होता है ॥१५६॥

अत्राप्युदाहरंति सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च॥
भुंजन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहे ॥१५७॥

इस विषय में कहा है कि, सुवर्ण, लोहा, तांबा, कांस्य, चांदी, इनके पात्र में भिक्षुक भोजन करने से दोषी नहीं होता, परन्तु इन सब पात्रों के ग्रहण करने से दोषी होता है। ॥१५७॥

यतिहस्ते जलं दद्यादिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ।
तदैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोषमम् ॥१५८॥

प्रथम संन्यासी के हाथ मे जल दे, फिर भिक्षा दे, और इसके पीछे जल दे, तो वह भिक्षा, मेरुपर्वत के समान हो जातीहै; और वह जल समुद्रकी समान हो जाता है ॥१५८॥

चरेन्माधुकरी वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥
एकान्न नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥१५९॥

यति मलेच्छ के गृह से भी भ्रमर की वृत्ति का अवलम्बन करें अर्थात् अनेक स्थानों से अन्न का संग्रह करे परन्तु एक के स्थान का अन्न भक्षण न करे चाहे उसका देने वाला वृहस्पति के भी समान क्यों न हो। ॥१५९॥

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्ध भैक्षं गृहे वसन् ॥

दशरात्रं पिवेद्वजमापस्तु त्र्यहमेव च ॥१६०॥

और जो यति गृह में रहकर विपत्ति के बिना आये ही इच्छानुसार सिद्ध हए अन्न की भिक्षा करता है वह दश दिन तक वन और तीन दिन तक शुद्ध जल का पान करें ॥१६०॥

गोमूत्रेण तु संमिश्र यावकं घृतपाचितम् ।
एतद्वजमिति प्रोक्तं भगवानतिरबवीत् ॥१६१ ॥

गोमूत्र से मिले हुए और धृत से पकाये हुए जौ का नाम "वज्र" है यह भगवान् अत्रि जी ने कहा है। ॥१६१॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः॥
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च पडेते भिक्षकाः स्मृताः॥१६२॥

ब्रह्मचारी, यती, विद्यार्थी, गुरु की प्रतिपालना करनेवाला, पथिक और दरिद्र, इन छः को भिक्षुक कहते हैं ॥१६२॥

षण्मासान्कामयेन्मयों गुर्विणीमेव चै स्त्रियम् ॥
आदतजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६॥

गर्भवती स्त्री के संग छः महीने तक विषय किया जा सकता है, और फिर बालक होने के उपरान्त जब तक बालक के दांत न उग जाए

तव तक विषय नहीं करना चाहिए कर इस प्रकार से धर्म नष्ट नहीं होता है। ॥१६३॥

ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीयं गुरुतल्पगः ॥
तृतीयं तुं सुरापेयं चतुर्थ स्तेयमेव च ॥१६४॥

बालक के जन्म होने के पीछे पहले महीने में ब्रह्महत्या का, दूसरे में गुरुपत्नी में गमन का, तीसरे में सुरापान, और चौथे में चोरी करने का ॥१६४॥

पापानां चैव संसर्ग पंचमं पातकं महत् ॥१६५॥

पांचवें में गाढ संसर्ग करने का पाप लगता है ॥१६५॥

एषामेन विशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥
त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेब्रह्महत्या पृथ स्पृथक् ॥१६६॥

इन पापों से शुद्ध होने के निमित्त क्रमानुसार तीन वर्ष तक व्रत करे तब ब्रह्महत्या के पापसे भी मुक्त हो सकता है और चतुर्विध अन्य पातकों से भी पृथक् पृथक् कृच्छ्र करने से मुक्त होता है ॥१६६॥

अर्द्धे तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥
षड्भागो द्वादशश्चैव विट शूद्रयोस्तथा भवेत् ॥१६७॥

क्षत्री को ब्रह्महत्या का ब्राह्मण से आधा पाप और वैश्य को छठा: भाग, और शूद्र को बारहवाँ भाग ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥१६७॥

त्रीन्मासान्नक्तमश्नीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥
स्त्रीपाती शुद्धयतेऽप्येवं चरेत्कृच्छाव्दमेव वा॥१६८॥

स्त्री को मारनेवाला मनुष्य तीन महीने तक नक्तव्रत करै, पृथ्वी में शयन, और एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करै तब शुद्ध होताहै ॥१६८॥

रजक: शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ।।
एतेषां यस्तु भुंक्ते वै द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥१६९॥

धोबी, नट, वेणुकर्मोपजीवी (डोम) इनके यहां के अन्न को जो ब्राह्मण भोजन करता है वह चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होता है। ॥१६९॥

सर्वांत्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥
पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरब्रवीत् ॥१७०॥

सम्पूर्ण अंत्यजों के साथ जाने और उनके द्रव्य के भोजन करने एवम् उनके साथ बैठने से पराकव्रत के करने से शुद्ध होताहै, यह भगवान् अत्रि जी ने कहा है ॥१७०॥

चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः॥
गोमूत्रयावकाहारः सप्तपत्रिव्य हान्यपि ॥ १७१॥

जो ब्राह्मण चांडाल के पात्र का जल पीताहै वह सत्ताईस दिन तक गोमूत्र से मिले हुए जौ का भोजन करने पर शुद्ध होताहै ॥१७१॥

संस्पृष्टं यस्तु पक्कानमंत्यजैर्वाप्युदक्यया।
अज्ञानाद्राह्मणोऽश्रीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥१७२॥

यदि जिस ब्राह्मण ने चांडाल अथवा ऋतुमती स्त्री के स्पर्श किये हुए पक्कान्न का अज्ञानता से भोजन किया है तो उसको आधा प्राजापत्य करना चाहिए। ॥१७२॥

चांडालानं यदा भुक्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः॥
चांद्रयणं चरेनिःक्षत्र: सांतपनं चरेत् ॥१७३॥

यदि चांडाल के यहां के अन्न को चारों वर्णों ने भोजन कियाहै, तो उनकी शुद्धि इस प्रकार से होती है, ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करे, क्षत्रिय सांतपन व्रत को करे। ॥१७३॥

षड्रात्रमाचरेदेश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥
त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥१७४॥

और वैश्य छ: दिन तक व्रत और पंचगव्य का पान करे, और शूद्र तीन रात्रि तक व्रत करके यत् किंचित् दान करने से उसकी शुद्धि होती है। ॥१७४॥

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसंस्पृशः ॥
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१७५॥

जिस ब्राह्मण ने वृक्ष पर चढकर फल खाया है और उस समय उस वृक्षकी जड को चांडाल ने छू लिया हो तो उस ब्राह्मण का प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥१७५॥

ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्तानमाचरेत् ।
नक्तमोजी, भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥१७६॥

ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर वह ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करे, और एक दिन नक्त भोजन करने के पश्चात् घृत का पान करने पर वह शुद्ध होता है। ॥१७६॥

एक: वृक्ष समारूढश्चंडालो ब्राझणस्तथा।
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ॥१७७॥

जो ब्राह्मण और चांडाल एक ही वृक्ष पर चढकर वहां स्थित फलों को भक्षण करते हैं तो उस ब्राह्मण का प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥१७७॥

ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥
अहोरात्रोषितों भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥१७८॥

ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर वस्त्रों सहित स्नान करके अहोरात्र (एक दिन और एक रात) उपवास करने के बाद पंचगव्य के पीने से उसकी शुद्धि होती है ॥१७८॥

एकशाखासमारूढचंडालो ब्राह्मणो यदा ॥
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१७९॥

जो ब्राह्मण और चांडाल एक ही वृक्ष की शाखापर चढकर फलों को भक्षण करते हैं तो उस ब्राह्मण का प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा। ॥१७९॥

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥
स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्काच्शुद्धिः सांतपने तथा ॥१८०॥

वह ब्राह्मण तीन रात्रि तक उपवास करने के पश्च्यात पंचगव्य का पान करने पर शुद्ध होता है ॥१८०॥

तप्तकृच्छ्रे पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाभिधीयते ॥१८१॥

स्त्रियों का म्लेच्छके साथ संसर्ग होने पर सांतपन कृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है, और इसके पश्च्यात तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शास्त्रकारों ने उनकी शुद्धि कही है ॥१८१॥

स वर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥
सचैलं स्नानमादाय वृतस्य प्राशनेन च ॥१८२॥

संगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुनः ॥१८३॥

म्लेच्छ ने जिसका संग किया है ऐसी भार्या के साथ संभोग करनेवाला वन सहित स्नान करै और केवल घृत का ही भोजन कर तप्त क्रच्छ करे तब शुद्ध होता है और जिसने संतान के निमित्त ऐसी स्त्री का संग किया हो वह भी उपरोक्त व्रत के करने से शुद्ध होता है। ॥१८२-१८३॥

चंडालम्लेच्छश्वपचकपालव्रतधारिणः॥
अकामतः स्त्रियों गत्वा पाराकेण विशुद्धयते ॥१८४॥

चांडाल, म्लेच्छ, श्वपच, कपालत्रतधारी (अघोरी) जिस मनुष्य ने अज्ञानतासे इनकी स्त्रियों के साथ गमन किया है तो वह पराकव्रत का अनुष्ठान करने से शुद्ध होताहै ॥१८४॥

कामतस्तु प्रसूतां वा तत्समो नात्र संशयः॥
स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥१८५॥

यदि जानकर इन स्त्रियों में जिस मनुष्य ने गमन किया है; अथवा संतान उत्पन्न होने पर प्रसूता स्त्री के संग भोग करनेवाला पुरुष स्त्री

की समान जोति में होजाताहै इसमें कुछ भी संदेह नहीं कारण कि वह पुरुष ही उस स्त्री की संतान होकर जन्म लेता है ॥१८५॥

तै भ्यतो धृताभ्यस्तो विण्मूत्रं कुरुते दिनः॥
तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः॥
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥१८६॥

जो ब्राह्मण तेल वा घृत से उवटन करके (विना स्नान किये) शौच को जाताहै, अथवा लघुशंका करता है अथवा जो ब्राह्मण तैल वा धृतसे उबटन करके चाण्डाल को स्पर्श करता है वह पंचगव्य का पान करके एक दिन रात्रि तक उपवास करने के पश्च्यात शुद्ध होताहै ॥१८६॥

केशकीटनखस्नायु अस्थिकण्टकमेव च ।
स्पृष्ट्वा नाद्यदके स्नात्वा घृतंप्राश्य विशुद्धयति ॥१८७॥

केश, कीट, नख, स्नायु, अस्थि और कांटों को जो स्पर्श करताहै वह नदी के जल में स्नान कर घृत का भोजन करने से शुद्ध होता है ॥१८७॥

मत्स्यास्थि जंबुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥
हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्धयति ॥१८८॥

मछली की अस्थि, शृगाल की अस्थि, नख, शुक्ति (शीपी) और कौडी इनके स्पर्श करने से स्नानकर, सुवर्ण से शोधित गरम घी का भोजन करने से शुद्ध होता है ॥१८८॥

गोकुले कंदुशालायां तैलचक्रेक्षुयंत्रयोः ॥
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥१८९॥

गोकुल (ग्वाल) कंदुशाला (भट्टी) तेल निकालने का कोल्हू, और ईख पेलने का कोल्हू, स्त्री और रोगी का शौचाशौच विचार के योग्य नहीं है, अर्थात् यह सभी पवित्र हैं ॥१८९॥

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥
नापो मूत्रपुरीवाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥१९०॥

स्त्रियाँ देवताओं के जारत्व से भी दूषित नहीं होती, ब्राह्मण वेदोक्त कर्म यज्ञिय हिंसा इत्यादिक करने से दूषित नहीं होते, तालाब आदि में स्थित जल विष्ठा मूत्र के स्पर्श होनेसे भी अशुद्ध नहीं होता, आग्नि अपवित्र वस्तुओं को दग्ध करके भी अपवित्र नहीं होती। ॥१९०॥

पूर्व स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभिः।
भुजते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यंति कहिंचित् ॥१९१॥

प्रथम स्त्रियोंको चंद्रमा, गंधर्व, अग्नि इत्यादि देवता भोग करते हैं, इनके बाद मनुष्य भोगते हैं। वह किसी प्रकार से भी मानसादि सामान्य पाप से दुष्ट नहीं होती ॥१९१॥

असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौनिषेच्यते ॥
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भ न मुंचति ॥१९२॥

असवर्ण पुरुष का जो स्त्री गर्भ धारण करती है वह गर्भिणी स्त्री जब तक संतान उत्पन्न न कर तब तक अशुद्ध रहती है। ॥१९२॥

विभुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥
तदा सा शुद्धयते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥१९३॥

संतान जन्म के पीछे वह स्त्री जब ऋतुमयी होती है तब वह कांचन-आग्नि के समान शुद्ध हो जातीहै ॥१९३॥

स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥
बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥१९४॥

स्त्री के सब प्रकार से अस्वीकार अवस्था में यदि कोई छल से अथवा बल से या चोरी से उससे मिले ॥१९४॥

न त्याज्या दूषिता नारी न कामोस्या विधीयते ॥
ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्धयति ॥१९५॥

तब इस प्रकार दुष्टा हुई स्त्री को त्याग करना उचित नहीं, कारण कि इस कार्य में स्त्री की इच्छा नहीं थी, पीछे ऋतुकाल के उपस्थित होने पर इस स्त्री के साथ संसर्ग करना योग्य है (इससे प्रथम संसर्ग न करे) कारण कि ऋतुकाल के आने पर स्त्री शुद्ध होती हैं। ॥१९५॥

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अंत्यजा: स्मृताः ॥१९६॥

रजक, चर्मकार, नट, बुरुड (जो बांस की डालियाँ बनाते हैं) धीमर, कलाल, भील, इन सात जातियोंको अंत्यज कहतेहैं ॥१९६॥

एतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥
कृच्छ्रव्यमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव तद्वयम् ॥१९७॥

जानकर जो स्त्री इनसे अथवा जो मनुष्य इनकी स्त्री में गमन करताहै और जो इनके यहाँ का अन्न भोजन करता है अथवा दान लेता है उसका प्रायश्चित्त कृच्छाब्द (एक वर्ष तक एक एक करके क्रमानुसार प्राजापत्य व्रत ३० प्राजापत्य) करना योग्य है, और जिसने बिना जाने किया है वह चान्द्रायण करे तब शुद्ध होताहै ॥१९७॥

सकृद्भक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः॥
प्राजापत्येन शुद्धयेत ऋतुप्रस्त्रवणेन तु ॥१९८॥

जो स्त्री केवल एक ही बार म्लेच्छ अथवा उसके समान पापी, चांडाल अथवा अत्यन्त पापी इत्यादि से भोगी गई है, उसको प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करना चाहिए तथा रजस्वला होने पर उसकी शुद्धि होती है। ॥१९८॥

वलोद्धृता स्वयं वापि परप्रेरितया यदि ॥
सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्धयति ॥१९९॥

जो स्त्री बलपूर्वक हरी गई हो, अथवा किसी के कहने से गई हो, और एकवार ही भोगी गई हो तो वह प्राजापत्य व्रत को करके शुद्ध होती है। ॥१९९॥

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यदजो भवेत् ॥
न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ॥२००॥

जिन स्त्रियों ने बहुत दिनों के तप का प्रारंभ किया हो, उनका व्रत उनके मासिक धर्म होने पर भी भंग नहीं होता ॥२००॥

मद्यसंस्पृष्टकुभषु यत्तीयं पिबति द्विजः॥
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत पुनः संस्कारमहति ॥ २०१॥

जिस ब्राह्मण ने मदिरा से छुए घडे का जल पिया हो तो वह कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त करके शुद्ध होता है, और फिर वह संस्कार के योग्य होता है ॥२०१॥

अंत्यजस्थासु ये वृक्षा वहुपुष्पफलोपगाः॥
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२॥

जो वृक्ष अंत्यजों के हों, और उन पर बहुत सारे फल पुष्प आते हों तो उन वृक्षों के फूल फल सभी के भोगने योग्य हैं ॥२०२॥

चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोय पिवति द्विजः ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत आपस्तंबोजवीन्मुनिः ॥२०३॥

जो ब्राह्मण चाण्डाल से स्पर्श किये हुए जल को पीता है वह कच्छृपाद का अनुष्ठान करनेसे 'शुद्ध होताहै यह आपस्तंव ऋषि का वचन है ॥२०३॥

श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रीरजीमधमेव च ॥
एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥२०४॥

श्लेष्मा, जूता, विष्ठा, मूत्र, रज, रुधिर, वा मदिरा से दूषित कूप के जल का पान करने से उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार से होगा ॥२०४॥

एक द्वयहं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥२०५॥

ब्राह्मण तीन दिन तक, क्षत्रिय दो दिन तक, और वैश्य एक दिन तक उपवास करने तथा शूद्र नक्तव्रत के करने से शुद्ध होताहै ॥२०५ ॥

सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥
पर्युषिते स्वहोरात्रमतिरिक्त दिनत्रयम् ॥
शिरस्कठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥२०६॥

सद्यः वमन के स्पर्श से वस्त्रों सहित स्नान करै, और पहले दिन के वमन के स्पर्श से एक दिन और अधिक दिन की वमन के स्पर्श से तीन दिन तक उपवास करना ब्राह्मणों का कर्तव्य है। मस्तक में सुरा का लेप होने से दस दिन, और कंठ में सुरा का लेप होने से छः दिन, जांघ में सुरा का लेप होने से तीन दिन और पैर में सुरा का लेप होने से एक दिन तक उपवास करना चाहिए ॥२०६॥

दशषट् त्रितयकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ॥
अत्राप्युदाहरति प्रमादान्मधपसुरांसकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः॥
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ॥ २०७ ॥

इस स्थान पर ऋषि ने कहा कि जो श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रमाद के वश से मद्यपाई पुरुष से मद्य लेकर (अर्थात् अविधि मद्य) पान करता है वह गोमूत्र से सिद्ध हुए जौ को दस दिन तक खाने से शुद्ध होता है ॥२०७॥

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुक्ते द्विजोत्तमः ॥

न देवा भुंजते तस्य न पिवंति हविर्जलम् ॥२०८॥

जो ब्राह्मण मद्यप- अविधि मद्य का पान करने वाले के अथवा निषाद के अन्न का भोजन करता है, देवता उसके दिये हुए हव्य का, भोजन तथा उसके दिए हुए जल का पान तक भी नहीं करते ॥२०८॥

चिंतिभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च व्याधितः ॥
प्राजापत्येन शुद्धयेतं ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥२०९॥

जो स्त्री स्वामी के साथ मरने को चिता पर चढकर पश्चात् उठकर चिता से निकल पड़े अथवा रोगद्वारा रजोहीन हो जाय वह प्राजापत्य व्रत करने तथा दश ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होती है ॥२०९॥

ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलावहाः ॥
अनाशकान्निवर्तते चिकीपति गृहस्थितिम् ॥२१०॥

जो निंदित ब्राह्मण संन्यासी हो जाते हैं, वा जिन्होंने अपनी मृत्यु का संकल्प करके अग्नि में प्रवेश अथवा जल में प्रवेश किया और फिर भी उनका जीवन नष्ट नहीं हुआ है। ॥२१०॥

धारयेत्रीणि कृच्छांणि चांद्रायणमयापि वा ।
जाति कर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥२११॥

और वह फिर गृहस्थ होने की इच्छा करते हैं तो वह तीन प्राजापत्य, चांद्रायण और जातकर्म इत्यादि सब संस्कारों के भागी होते हैं। ॥२११॥

न शौचं नोदकं नाश्च नापवादानुकंपने ॥
ब्रह्मदंडहतानां तु न कार्य कटधारणम् ॥२१२॥

ब्रह्मदंड -ब्रह्मशापादि से जो नष्ट होगया है, उसका अशौच नहीं होता उसके निमित्त जल आदि का दान अथवा अश्रुत्याग करना, उचित नहीं है उसका गुण वर्णन करना, या उसके प्रति दया प्रकाश करके दुःख करना वा उसके निमित्त "कट धारण", शय्यान्तर को छोडकर केवल काठ पर शयन करना ठीक नहीं है ॥२१२॥

स्नेह कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥
गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् ॥ २१३ ॥

यदि कोई मनुष्य इस (त्रह्मदंडहत) मनुष्य के प्रति अंतःकरण के स्नेह से अथवा उसके क्षमावान पुत्रादि के भय से अथवा विनय से इन सब निषिद्ध कर्मो का अनुष्ठान करे तो वह गोमूत्र से सिद्ध हुए जौ का आहार करे यही एक उसका प्रायश्चित्त है। ॥२१३॥

वृद्धः शौचस्मृतेलृप्तः प्रत्याख्याताभिषक्रियः ।
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनांबुभिः ॥२१४॥

जो मनुष्य वृद्ध होकर शौच स्मृति से वर्जित हो गया हो, अर्थात् जिसको शौचाशौच के विषय का ज्ञान नहीं है, वैद्यों ने भी जिसकी चिकित्सा करनी छोड दी हो और उसके पश्चात् उसने ऊँचे से गिरकर या अग्नि में प्रवेश करके निर्जल रहकर वा जल में डूवकर आत्मघात किया हो ॥२१४॥

तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः ॥
तृतीयेनूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥२१५॥

तो उसके पुत्रों को तीन दिन तक अशौच होगा, दूसरे ही दिनअस्थि संचय और तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिए ॥२१५॥

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥
मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्य तमःक्षयः ॥२१६॥

जिसके घर में एक भी गौ बछडेवाली अर्थात् दूध देने वाली न हो उसका मंगल किस प्रकार से हो सकता है और पाप, दुःख तथा अमंगल का नाश किस प्रकार से हो सकता है ॥२१६॥

अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादानमाचरेत् ॥२१७॥

अधिक दूध दुहने से या अधिक चढने से, रस्सी डालने के अर्थ नाक छेदने से, या नदी अथवा पर्वत में रोकने से गौ की मृत्यु होने पर

साक्षात् गोवध प्रायश्चित्त का पादोन (एक पाद कम) प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥२१७॥

अष्टागवं धर्महलं षड्वं व्यावहारिकम् ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्यकृत् ॥२१८॥

धर्म में निष्ठा करनेवाले आठ बैलों के हल को चलाते हैं; छ: बैलों का हल चलाना भी व्यावहारिक है, अर्थात् उसके करने से समाज में निन्दनीय नहीं है, निर्दयी मनुष्य चार बैलों का हल चलाते हैं, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वे गौ की हत्या करनेवाले हैं ॥२१८॥

द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्न तु चतुर्गवम् ॥
षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥२१९॥

दो बैलों का हल एक पहरतक और चार बैलों का हल मध्याह्न काल तक, छै: बैलों का हल तीन पहरतक, और आठ बैलों का हल सारे दिन चलाया जा सकता है ॥२१९॥

कोष्टाशिलागोघ्नः कृच्छ्रे सांतपनं चरेत् ॥
प्राजापत्यं चरेन्मृत्साअतिकृच्छ्र तु आयसैः ॥२२०॥

जो मनुष्य काष्ट, लोष्ट (ढेला आदि) से गौ को मारता है वह "कृच्छ्र' व्रत को करें और जिसने मट्टी के द्वारा गौहत्या की है उसको

"प्राजापत्य" व्रत करना चाहिए, और जिसने लोहदंड से गौहत्या की है उसे "अतिकृच्छ्र' व्रत को करना चाहिए ॥२२०॥

प्रायश्चित्तेन तच्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनहुत्स हितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥२२१ ॥

प्रायश्चित्त हो जाने पर ब्राह्मण को भोजन करावाना चाहिए और बछडे सहित एक गाय ब्राह्मण को दक्षिणा में देनी चाहिए ॥२२१॥

शरभोष्टहयान्नागान्सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥
हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२२२॥

शरभ, ऊंट, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र तथा गधा इनकी हत्या करने वाले को शूद्र की हत्या का जो प्रायश्चित्त कहा है उसे करना चाहिए ॥२२२॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ॥
हत्या व्यहं पिवेत्क्षीरं कृच्छ्रे वा पादिकं चरेत् ॥२२३॥

बिल्ली, गोह, नेवला, मेंढक तथा पक्षी को मारनेवाले तीन दिन तक दुग्ध पान करने के पश्च्यात फिर "पादकृच्छ" व्रत को करना चाहिए ॥२२३॥

चंडालस्य च संस्पृष्टं विष्मूत्रोच्छिष्टमेव वा ॥

त्रिरात्रेण विशुद्ध हि भुकोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२४॥

चांडाल का स्पर्श किया हुआ और विष्टा मूत्र से स्पर्श किया हुआ तथा अपनी उच्छिष्ट को जो मनुष्य भोजन करता है उसे तीन दिन तक उच्छिष्ट भोजन करने के प्रायश्चित्त को करना चाहिए ॥२२४॥

वापीकूपतडागानां दूपितानां च शोधनम् ॥
उद्धरेत्पशतं पूर्ण पंचगव्येन शुद्धयति ॥२२५॥

जो जलाशय, बावडी, कुआ, तलाव, मुरदे इत्यादि के स्पर्श से दूपित होजाते हैं इनकी शुद्धि छह सौ घडे जल भरकर बाहर निकालने से तथा उसमें पंचगव्य डालने से होती है। ॥२२५॥

अस्थिवर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥
उद्धरेदुदकं सर्व शोधनं परिमार्जनम् ॥२२६॥

जिन जलाशयों में अस्थि, और चर्म पड़े हैं अथवा गर्दभ कुत्ते गिर कर मर गए हैं, उन जलाशयों का संपूर्ण उदक निकाल कर पंचगव्य आदि से शुद्ध करना चाहिए ॥२२६॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारकशिल्पिहस्ते॥ .
स्त्रीवालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥२२७॥

दोहिनी और मशक का जल, यन्त्र, आकर (खान) कारीगर और शिल्पी का हाथ, स्त्री, बालक और बुड्ढों के आचरण, और जिनका अपवित्रपन प्रत्यक्ष में नहीं देखा गया है वह सब पवित्र है ॥२२७॥

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥
अवास्ययज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोपा न विकल्पनीयाः ॥२२८॥

नगरी की रोक, शत्रुओं से परकोटा के घिरजाने के समय में, संकट के देश में, सेवा के स्थान में, अग्नि के घर में लग लाने के समय, यज्ञ की समाप्ति हुए बिना और बड़े उत्सवों के समय में दोषा दोष का विचार करना कर्तव्य नहीं है। ॥२२८॥

प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोणयां जलं कौशविनिर्गतं च ॥
श्वपाकचंडालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥२२९॥

प्याऊ, वन, घड़ियों का कुआं और द्रोणी (खेत की क्यारी) में जो स्रोत से निकला हुआ जल हो उसके पीने में कुछ दोष नहीं है। कंजर, और चांडाल के बनाये हुए कुँए आदि का जल पीकर मनुष्यको पंचगव्य के पीने से शुद्धि होती है। ॥२२९॥

रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥२३०॥

वीर्य, विष्ठा, अथवा मूत्र, इनका जिसमें स्पर्श हो ऐसे कूप के जल को जो पान करता है वह
रात्रि तक उपवास कर और जिसने ऐसे दूषित घडे के जलका पान किया हो उसे शुद्धि के लिए "सान्तपन" व्रत करना चाहिए ॥२३०॥

क्लिन्नभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥
प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रे दिनोत्तमः ॥ २३१ ॥

जो किसी ब्राह्मण ने मुरदे के स्पर्श से दूषित हुए जल का पान किया हो तो उसका प्रायश्चित्त तप्तकृच्छ्र व्रत करना योग्य है ॥२३१॥ .

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥
प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥२३२॥

जिस ब्राह्मण ने, ऊंटनी, गधी, वा किसी अन्य मनुष्य की स्त्री के दूध को पिया हो तो वह तप्तकच्छ्र व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिए। ॥२३२॥

वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः।
पंचरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥२३३॥

यदि ब्राह्मण को उच्छिष्ट अवस्था में यवन इत्यादि स्पर्श कर ले, तो वह पंचगव्य का पाद कर पांच रात्रि तक उपवास करे तब शुद्ध होता है ॥२३३॥

शुचि गोपिकृत्तीयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥
चर्मभांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥२३४॥

जिस जल से गौ की तृप्ति हो सके वह पृथ्वी पर रक्खा हुआ निर्मल जल, चर्मपात्र से लगाई हुई धारा का जल, और यंत्र से निकला हुआ जल यह सब पवित्र हैं ॥२३४॥

चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥
उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥२३५॥

चांडाल ने जिसे स्पर्श किया हो वह केवल स्नान ही करे और जो उच्छिष्ट अवस्था में स्पर्श किया हो तो तीन रात्रि में शुद्ध होता है ॥ २३५॥

आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥
आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥२३६॥

खानसे निकली हुई वस्तु कभी अशुद्ध नहीं होती, मदिरा के स्थान को छोडकर सभी आकर शुद्ध हैं ॥२३६॥

भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥
खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यदृष्टतर शुचि ॥२३७॥

जौ, चना, खजूर और कपूर यह भुने हों अथवा विना भुने हो सभी अवस्थामें शुद्ध है और अन्यान्य द्रव्यों की ढेरिये जो परस्पर मिली हुई रक्खी हों उनमें जो अशुद्ध हो जाय वहीं अशुद्ध गिनी जायेगी दूसरी नहीं ॥२३७॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥
गोकुले कंदुशा यां तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ॥२३८॥

स्त्रियों के आचरण किये हुए कार्य में गायों के कुल में , कंठुशाला में अर्थात् हलवाई की दूकान में, तेल निकालने के यंत्र में, और ईख के कोल्हू में, शौचाशौच का विचार करना योग्य नहीं है। ॥२३८॥

अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धताश्च रेणवः ॥२३९॥

पवित्र आकाश से गिरनेवाली जलधाराः और वा युसे उडी हुई धूलि यह सर्वदा ही पवित्र हैं। ॥२३९॥

बहूनामेकलमानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ॥
अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथंचन ॥२४०॥

एक साथ बैठे हुए अनेक मनुष्यों में यदि एक मनुष्य अपवित्र हुआ बैठा हो तो अशौच उसी एक को ही लगता है, अन्य मनुष्यों को किसी तरहसे अशौच लगता नहीं ॥२४०॥

एकपंक्त्युषविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ।
ययेको लभते नीली सर्व तेशुचयः स्मृताः ॥२४१॥

एक पंक्ति में अलग अलग बैठे हुए भोजन करने वालो मे से यदि एक मनुष्य की देह में नील का स्पर्श हो जाय तो उस पंक्ति के सभी मनुष्यों को अशुद्ध कहा जायगा ॥२४१॥

यस्प पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥
त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ॥२४२॥

जिस मनुष्य के शरीर पर नीले रंग का वस्त्र देखा जायगा वह मनुष्य तीन रात्रि, और अन्य एक दिन तक उपवास करें ॥२४२॥

आदित्येस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि।
भगवन्केन शुद्धिः स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन ॥२४३॥

हे भगवन् ! हे तपोधन ! सूर्य के अस्त होने के उपरान्त रात्रि के समय यदि स्पर्श न करने योग्य वस्तु का जो स्पर्श कर ले तो उसकी शुद्धि किस प्रकार से होती है वह आप कहिये ॥२४३॥

आदित्येस्तमिते रात्री स्पर्शहीनं दिवा जलम् ॥
तेनैव सर्वशुद्धिः स्याच्छवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥२४४॥

अत्रि जी बोले रात्रि के समय बिना छुआ हुआ जो दिन का निर्मल जल रक्खा हुआ है उसके जल से मुरदे के स्पर्श अतिरिक्त और सबकी शुद्धि होती है ॥२४४॥

देशं कालं च यः शक्तिं पापं चापेक्षयेत्ततः ॥
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः ॥२४५॥

और जिन पापों का प्रायश्चित्त शास्त्र में नहीं कहा है, देश, समय, शक्ति और पाप का विचार करके उसके प्रायश्चित्त की कल्पना कर लेनी चाहिए ॥२४५॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ॥
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥२४६॥

देवयात्रा में, विवाह में; यज्ञआदि प्रकरण में और सम्पूर्ण उत्सवों में स्पर्श करने के योग्य और अयोग्य का विचार नहीं होता है ॥२४६॥

आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥
स्नेहपकं च तकं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥२४७॥

चने आदि की खटाई, दूध, कंदुक, दही, सत्तू, स्नेह, घी तेलसे पका हुआ पदार्थ और मट्ठा यह यदि शूद्र के यहां का भी हो उसको भक्षण करने से ब्राह्मणों को दोष नहीं है ॥२४७॥

आर्दमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥
अंत्यभांड स्थितास्त्वते निष्कांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥२४८॥

आर्द्रमांस-बिना पका हुआ मांस) घृत, तेल और फल से उत्पन्न हुए स्नेह यह चांडाल के पात्र से निकलतेही शुद्ध हो जाते हैं ॥२४८॥

अज्ञानापिवते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥२४९॥

यदि ब्राह्मण ने विना जाने हुए शूद्रके यहाँ का जलपान कर लिया है तो वह स्नान करने के उपरान्त पंचगन्य का पानकर एक दिन तक उपवास करने पर शुद्ध होता है ॥२४९॥

आहितामिस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत्।
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादाग्नि विनिर्दिशेत् ॥२५०॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हैं वह यदि महापातकी हो जाएं तो वह जल में होम के पात्रों को फेंककर फिर अग्नि को ग्रहण करें ॥२५०॥

यो गृहीत्वा विवाहाग्नि गृहस्थ इति मन्यते ॥
अत्र तस्य न भोक्तव्यं वृथाःपाको हि स स्मृतः ॥२५१॥

जो मनुष्य विवाह की अग्नि को ग्रहण करके अपने को गृहस्थ मानते हैं और अग्नि की रक्षा नहीं करते हैं उनका अन्न भोजन करने के योग्य

नहीं है, कारण कि उनका भोजन वृथापाक (निष्फल) कहा गया है॥२५१॥

वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरेद्विजः ॥
प्राणानाशु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥२५२॥

इस वृथापाक के अन्न का जो ब्राह्मण भोजन कर ले वह जल के वीच में तीनवार प्राणायाम करके घृत का भोजन करने पर शुद्ध होता है ॥२५२॥

वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥२५३॥

पाँच हत्या के पाप को दूरकरने के निमित्त वैदिक अग्नि मे अथवा लौकिक अग्नि में अथवा हुतोच्छिष्ठ अग्नि अर्थात जिसमें नित्य होम किया हो ऐसी अग्नि में अथवा जल में अथवा पृथ्वी में वैश्वदेव करें ॥ २५३॥

कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेनिर्गुणो भवेत् ॥
पूर्व पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्नि 'धारयेदुद्धः ॥२५४॥

यदि बड़ा भाई निर्गुण हो, और छोटा सम्पूर्ण गुणों से विभूषित हो तो ज्ञानी छोटा भाई बडे भाई से पहले विवाह करके गृह अग्नि को धारण करे ॥२५४॥

ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्यग्निं यवीयकः ॥
नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥२५५॥

परन्तु यदि बड़े भाई में कोई दोष न तो और तब भी छोटा भाई गृह अग्नि को ग्रहण करले तो उसको प्रतिदिनः निःसंदेह ब्रह्महत्या का पाप लगता है। ॥२५५॥

महापातकिसंस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ।
संस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते स्नानमेव विधीयते ॥२५६॥

जिस मनुष्य को महापातकी ने स्पर्श किया हो वह, और जिसने महापातकी के स्पर्श किये हुए के अन्न को भोजन किया हो वह दोनों ही स्नान करने से शुद्ध हो जाते हैं। ॥२५६॥
पतितैः सह संसर्गे मासार्द्ध मासमेव च ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन वि शुद्धयति ॥२५७॥

पतित मनुष्य का साथ जिसने एक पक्ष वा एक महीने तक किया हो वह मनुष्य पंद्रह दिन तक गोमूत्र से सिद्ध हुए जौ का भोजन करने पर शुद्ध होता है ॥२५७॥

कृच्छार्द्धे पतितस्यैव सकृद्भुत्ता द्विजोत्तमः॥
अविज्ञा नाच तद्भुक्त्वा कृच्छ्रे सांतपनं चरेत् ॥२५८॥

जो ब्राह्मण, पतित मनुष्य के यहां अन्न का भोजन जानकर करे तो उसको आधाकृच्छ व्रत करना चाहिए और विना जाने हुए भोजन कर ले तो कृच्छ्रसांतपन व्रत को करना चाहिए ॥२५८॥

पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं चंडालवेश्मनि ॥
मासार्द्ध तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥२५९॥

शातातप मुनिने कहा है कि यदि जिस मनुष्य ने पतित के यहांका भोजन किया हो तो वह चांडाल के घर में भोजन किया हो तो उसको पंद्रह दिन तक केवल जल का ही पान करना चाहिए ॥२५९॥

गोवाह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ॥
अग्निना न च संस्कारः शंखस्य वचनं यथा ॥२६०॥

गौ और ब्राह्मणके द्वारा निहत हुए और पतित मनुष्यों का अग्निसे संस्कार नहीं होता है, यही शंखऋषि का वचन है ॥२६०॥

यश्चंडाली द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥
त्रिभिः कृच्छविशुद्धयेत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥२६१॥

यदि ब्राह्मण कामदेव से मोहित हो किसी चांडाल की स्त्री के साथ भोग करले तो वह प्राजापत्य व्रत को कर तीन कृच्छ्रवत को करे तब शुद्ध होता है ॥२६१॥

पतितावाञ्चन्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ॥
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छं विनिर्दिशेत् ॥२६२॥

जिस ब्राह्मण ने पतित के यहां का अन्न ग्रहण किया हो तो उस अन्न को त्याग दे और यदि ब्राह्मण ने पतित के अन्न का भोजन किया हो तो उसको वमनद्वारा त्याग दे और फिर अतिकुच्छ्र व्रत को करे ॥२६२॥

अंत्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काठलोष्टतृणानि च॥
न स्पृशेतु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥२६३॥

अंत्यज (चांडालादि) के हाथ से फेंके हुए, काठ, लोष्ट, तृण और उच्छिष्ट का स्पर्शन नहीं करना चाहिए और यदि स्पर्श करे तो शुद्धि के लिए अहोरात्र व्रत करना चाहिए । ॥२६३॥

चंडाल पतितं म्लेच्छं मद्यमांड रजस्वलाम् ॥
द्विजःस्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो यदि संस्पृशेत् ॥२६४॥

अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वान्नं स्नानमाचरेत् ।
ब्रह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत्॥
सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषः समापयेत् ॥२६५॥

चांडाल, पतित, म्लेच्छ, मदिरा का पान और रजस्वला स्त्री इनका स्पर्श करने पर ब्राह्मण को भोजन नहीं करना चाहिए, और यदि

भोजन करते समय इनका स्पर्श होजाय तो फिर भोजन नहीं करना चाहिए, और उस अन्न को त्यागकर, स्नान करने के पश्च्यात ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर तीन रात्र उपवास करना चाहिए, और घृत के सहित जौ का भोजन कर व्रत को समाप्त कर देना चाहिए। ॥ २६४-२६५॥

भुंजानः संस्पृशेषस्तु वायसं कुकुटं तथा ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टस्यहेण तु ॥२६६॥

भोजन करते समय कौआ, या मुरगा छू जाय तो शुद्धि के लिए तीन रात्र तक उपवास करना चाहिए और यदि भोजन के अंत में उच्छिष्ट अवस्था के समय कौए या मुरगे का स्पर्श हो जाय तो एक दिन उपवास करने से शुद्ध होता है ॥२६६॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥
चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥२६७॥

जो नैष्ठिक धर्म में स्थित होकर फिर उसको त्याग देता है वह एक महीने तक चांद्रायण व्रत को करे पर शुद्ध होता है, यह शातातप ऋषि ने कहा है ॥२६७ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥
गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चांदायणं चरेत् ॥२६८॥

जो मनुष्य पशु और वेश्या में गमन करते हैं, उनको प्राजापत्य व्रत को करना चाहिए और जौ गौ के साथ गमन करते हैं उनको मनुजी के कहे हुए चांद्रायण व्रत को करना चाहिए ॥२६८॥

अमानुषीषु गोवर्जमुदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रे सांतपनं चरेत् ॥२६९॥

गौ के अतिरिक्त पशु की योनि, अयोनि अर्थात् भूमि आदि में अथवा जल में वीर्य डालने वाले मनुष्य को कृच्छ सांतपन व्रत को करना चाहिए ॥२६९॥

उदकयां सूतिकां वापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥
त्रिरांत्रेणैव शुद्धिः स्यादिधिरेष पुरातनः ॥२७०॥

रजस्वला, सूतिका, तथा अन्त्यजा का स्पर्श करनेवाला मनुष्य तीन रात्रि तक उपवास करने से शुद्ध होता है, यह पुरातन विधि है ॥२७०॥

संसर्गे यदि गच्छेच्चेदुदक्यया तथास्यजैः ॥
प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्व स्नान समाचरेत् ॥२७१॥

जिस मनुष्य का रजस्वला के साथ अथवा अन्त्यजा के साथ स्पर्श हो जाए तो वह मनुष्य प्रायश्चित्त करने के योग्य है, और प्रायश्चित्त के प्रथम स्नान करने के पश्च्यात ॥२७१॥

एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीष हु दिनत्रयम् ॥
दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥२७२॥

और एक दिन गोमूत्र पिये, और तीन दिन गौ के गोवर भक्षण करै, यदि विजातीय चांडाली स्त्री आदि के साथ जल पिया हो ता तीन दिन गोमूत्र और तीन दिन गोवर भक्षण करे, यदि पूर्वोक्त स्त्री के साथ मैथुन किया हो तो पांच तथा सात दिन गोमूत्र और गोबर का सेवन करने से दोष दूर होता है ॥२७२॥

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ।
पूर्यते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोपि ये ॥२७३॥

अन्य स्मृतियों में भी कहा है कि अपनी जाति के स्वीकार करने से अथवा ब्राह्मणों के अनुग्रह से महापात की पापी भी शुद्ध हो जाते हैं। ॥२७३॥

भोजने तु प्रस्क्ताना प्राजापत्यं विधीयते ॥
दंतकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ॥२७४॥

पूर्वोक्त विना शुद्ध हुए पातकियों के साथ भोजन करनेवाला पुरुष प्राजापत्य नामक व्रत करने से शुद्ध होता है और उनके साथ दंतधावन करने से एक दिन रात में शुद्ध होता है, यही पवित्र होने की विधि है। ॥२७४॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालवायसैः ॥
निराहारा भवेत्तावल्हात्वा कालेन शुद्धयति ॥२७५॥

जिस रजस्वला स्त्री को कुत्ता, कौआ, अथवा चांडाल छू ले तो वह रज की शुद्धि तक निराहार रह कर, चौथे दिन शुद्ध स्नान को करके शुद्ध हो जाती हैं। ॥२७५॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजंबुकशंवरैः ।
पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥२७६॥

जिस रजस्वला स्त्री को ऊँट, गीदड, वा शंबर स्पर्श करले तो वह पांच रात तक निराहार व्रतकर पंचगव्य के पान से शुद्ध होती है ॥२७६॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥
एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥२७७॥

यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने ब्राह्मणी रजस्वला को स्पर्श कर लिया हो तो वह एक रात्रि तक निराहार रहकर पंचगव्य का पान करने से शुद्ध होती है ॥२७७॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं: ब्राह्मण्या क्षत्रियीच या ॥
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्व्यासस्य वचनं यथा॥२७८॥

ब्राह्मणी रजस्वला ने क्षत्रिय रजस्वला का स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मणी तीन रात्रि तक अपवास कर पंचगव्य का पान करने से शुद्ध होती है यह व्यासजी का वचन है ॥२७८॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥
चतुर्रात्र निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥२७९॥

यदि वैश्य की रजस्वला कन्या को ब्राह्मण की स्त्री ने स्पर्श किया हो तो वह ब्राह्मणी चार रात्रि तक निराहार रहकर पंचगव्य का पान करने से शुद्ध हो जाती है ॥२७९॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा :॥
षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्राह्मणी कामकारतः॥२८०॥

यदि ब्राह्म रजस्वला शूद्रा रजस्वलाका स्पर्श करले तो छह रात्रि में शुद्ध होती है ॥२८०॥

अकामतश्चरेदूर्व ब्राह्मणी सर्वतः स्पृशेत् ॥
चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥२८१॥

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणी सबको स्पर्श करसकती है, इस रीति से ले चारों वर्णों की शुद्धि कहीं है ॥२८१॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥
भोगने मूत्रचारे शंखस्य वचनंयथा ॥२८२॥

स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥
वैश्य नक्तं च कुर्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥२८३॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ने उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मण स्नान करै, और भोजन वा मूत्र त्यागने के समय स्पर्श किया हो तो भी स्नान करे, यदि इस प्रकार से क्षत्रिय ने स्पर्श किया हो तो जप, होम करे और इसी प्रकार से वैश्य ने स्पर्श किया हो तो नक्त व्रत करे, और यदि शूद्र ने स्पर्श किया हो तो उपवास करे यह शंख ऋषि का वचन है ॥२८२-२८३॥

चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ।
एतान्स्पृष्ठा दिजो मोहादाचामेत्प्रयतोपि सन् ॥२८४॥

चमार, धीमर, धोबी, और नट जिस ब्राह्मण ने इनका स्पर्श अज्ञानता से किया हो तो वह सावधान होकर आचमन करे ॥२८४॥

एतैः स्पृष्ट्वा द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥
उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्दतं प्राश्य विशुद्धयति ॥२८५॥

यदि यह ब्राह्मण का स्पर्श कर लें तो एक रात्र दूध पिये, और पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श कर लें तो घृत को खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है। ॥२८५॥

यस्तु च्छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्वधिगच्छति ॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत वृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥२८६॥

जो ब्राह्मण श्वपाक की छाया में चले तो स्नान कर घृत का भोजन करने से शुद्ध होता है। ॥२८६॥

अभिशस्तो द्विजोरण्ये ब्रह्महत्यावतं चरेत् ॥
मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणम थापि वा ॥२८७॥

जो ब्राह्मण अभिशस्त (कलंकित) हो वह वनमें जाकर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै, और एक महीने तक उपवास करे या चांद्रायण व्रत को करे ॥२८७॥

वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥
अभक्ष्यो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्धयति ॥२८८॥

यदि झूठा ही दोष लगा हो तो भ्रूणहत्या का व्रत करे, बारह दिन तक केवल जल ही को पीकर पराकव्रत का अनुष्ठान करने पर शुद्धि होती है ॥२८८॥

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शत्रहत्याव्रतं चरेत् ॥
निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥२८९॥

मूर्ख ब्राह्मण को मारकर शूद्र की हत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए और गुणी निर्गुण को मारकर पराक बत का अनुष्ठान करना चाहिए ॥२८९॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो स्त्रिये यदि ॥
तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥२९०॥

जिसको उपपातक लगा हो यदि वह मनुष्य म रजाय तो उसका संस्कार करने वाले को प्राजापत व्रत करना चाहिए ॥२९०॥

प्रभुनानोऽतिसस्नेहं कदाचिस्पृश्यते द्विजः॥ .
त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्नी: स्नेहमथवा चरेत् ॥२९१॥

स्नेह सहित पदार्थको भोजन करते समय ब्राह्मण को कदाचित् कोई छू ले तो तीन रात्र तक नक्तव्रत करना चाहिए अथवा रूखा भोजन करना चाहिए ॥२९१॥

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च ॥
केशकीटावपन्नं च पिबेद्राह्मी सुवर्चलाम् ॥२९२॥

बिल्ली, कौआ, कुत्ता, और नेवले की उच्छिष्ट को, केश और कीट युक्त द्रव्य को भोजन करने से तेज को बढाने वाली ब्राह्मी औषधी का काथ बना कर पान करना चाहिए ॥२९२॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥

स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्धयति ॥२९३॥

ऊंट गाडी पर अथवा गधे की सवारी पर बैठकर ब्राह्मण स्नान करके प्राणायाम करने पर शुद्ध होता है ॥२९३॥

सव्याहृंत सप्रणवां गायत्री शिरसा सह ॥
त्रि: पठेद्वा यतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥२९४॥

क्रमानुसार प्राणों को रोककर व्याहृति (भूः इत्यादि) ॐकार और शिरो मंत्र युक्त गायत्री का तीन बार पाठ करने को प्राणायाम कहते हैं ॥२९४॥

.

शकृद्धिगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥
क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्यं तथा दधि ॥२९५॥

गोबर से दुगना गोमूत्र, चौगुना घी, आठ गुना दूध और आठ गुना दही डाले इसे पंचगव्य कहते हैं ॥२९५॥

पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिवेत् ॥
उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥२९६॥

पंचगव्य का पान करनेवाला शूद्र, मदिरा का पान करनेवाला ब्राह्मण यह दोनों समान पाप के अधिकारी हैं, यह दोनों ही मनुष्य चिरकाल तक नरक में वास करते हैं ॥२९६॥

अजा गावो महिण्यश्च अमेध्यं भक्षयंति याः॥
दुग्ध हव्ये च कन्ये च गोमयं न विलेपयेत् ॥२९७॥

जो बकरी, गौ, और भैंस यह अपवित्र वस्तु इत्यादि का भोजन करती हों तो उनके दूध को हव्य अथवा कव्य के उपयोग मे नही लाना चाहिए और इनके गोवर से लीपना भी नहीं चाहिए ॥२९७॥

ऊनस्तनी अधीका वा या च स्वस्तनपायिनी॥.
तासां दुग्ध न होतव्यं हुतं चैवाहतं भवेत् ॥२९८॥

और जिनके थन छोटे या बड़े हों अथवा चार से अधिक हों अथवा जो अपना स्तनपान करती हो तो उनके दूध को हवन में प्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनके दूध का उपयोग हवं में वर्जित है ॥२९८॥

ब्रह्मौदने च सोमे च सीमंतोन्नयने तथा ॥ .
जातश्राद्धे नवश्राद्ध भुक्त्वा चांदायणं चरेत् ॥२९९॥

ब्रह्मौदन में, सोम यज्ञ में, सीमन्तोन्नयन में, और जातकर्म के श्राद्ध और नवक श्राद्ध में जो भोजन करता है उसे चांद्रायणन व्रत को करना चाहिए ॥२९९॥

राजानं हरते तेजः शूद्रांनं ब्रह्मवर्चसम् ॥

स्वसुतान्नं च यो भुक्ते स भुंक्त पृथिवीमलम् ॥३००॥

राजा का अन्न तेज को और शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को नष्ट करता है इस कारण वह भोजन करनेके योग्य नहीं है और जो मनुष्य अपनी कन्या के अन्न को भोजन करता है वह मानों पृथ्वी के मल का भोजन करता है, कन्या का अन्न और मल दोनों ही समान हैं ॥३००॥

स्वसुता अमनाता चेन्नाभीयात्तद्दहे पिता ॥
भुक्ते त्वस्या माययानं पूर्व सनरकं व्रजेत् ॥३०१॥

कन्याके संतानआदि उत्पन्न न हुई हो तो पिता उसके गृहमें भी भोजन न करें, और जो ऐसा करता है वह पूयनामक नरकमें प्राप्त होता है ॥३०१॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः ॥३०२॥

चारों वेदों का पढनेवाला, सभी शास्त्रों के मर्म को जाननेवाला जो राजा के घर में जाकर भोजन करता है तो वह राजा के यहां का अन्न खानेवाला विष्ठा का कीड़ा होकर जन्म लेता है ॥३०२॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽन्दिके॥
पतंति पितरस्तस्य यो भुक्तेऽना पदि द्विजः ॥३०३॥

जो ब्राह्मण बिना ही आपत्ति के आये हुए नवकश्राद्ध, तीन पक्षका श्राद्ध, पाण्मासिक श्राद्ध, मासिक और वार्षिक श्राद्ध में जो भोजन करता है उसके पितर गिरकर नरकको जाते हैं। ॥३०३॥

चांदायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥
त्रिपक्षे चैव कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥३०४॥

जिसने नवक श्राद्ध में भोजन किया है वह चांद्रायण व्रत को करें, और जिसने मासिक श्राद्ध में भोजन किया है वह पराक व्रतको करै, और जिसने त्रिपक्ष के श्राद्ध और छठे मास के श्राद्धमें भोजन किया है वह कृच्छ्रनतको करें ॥३०४॥

आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनरान्दिके ॥
ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ॥३०५॥

और जिसने वार्षिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पादकृच्छ्रको करें, और दूसरे वार्षिक श्राद्ध में भोजन करनेवाला एक दिन तक उपवास करे, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यको न करके महीनेके श्राद्ध में पर्व (पूर्णमासीआदि) में ॥३०५॥

द्वादशाहे त्रिपक्षेऽव्दे यस्तु भुक्ते द्विजोत्तमः ॥
पतंति पितरस्तस्य ब्रह्म के गता अपि ॥३०६॥

द्वादशाह श्राद्ध में [कुल्लाचारके अनुसार वा युक्त गणना के द्वारा आयुका भाव निर्णय होनेपर बारहदिनमें अर्थात् श्राद्धके दूसरे दिनमें जो कतव्य सपिंडीकरणान्त कार्य किया जाता है उसका नाम द्वादशाह श्राद्ध है] त्रिपक्ष श्राद्ध में और वार्षिक श्राद्ध में जो श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करता है उसके पितर ब्रह्मलोक में जाकर भी पतित होते हैं अर्थात वहाँ से गिरकर नरक को जाते हैं ॥३०६॥

मृत्यु के दिन से चौथे, पाँचवे नौ : और ग्यारहवें दिनः जो श्राद्ध होताहै उसको नवक श्राद्ध कहते हैं।

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नति वै द्विजाः ॥
भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥३०७॥

जिसके घर में, पक्ष में अथवा महीने में जो ब्राह्मण भोजन न करते हों तो उस दुष्टचित्त के अन्न को लाकर ब्राह्मण चाँद्रायण व्रत को करना चाहिए ॥३०७॥

एकादशाहेऽहोरात्रं भुक्त्वा संचयने त्र्यहम् ॥
उपोष्य विधिवहिनः कूष्मांडी जुहुयाघृतम् ॥२०८॥

मृतक के ग्यारहवें दिन भोजन करके अहोरात्र, और अस्थि संचय के दिन भोजन करके तीन दिन विधिपूर्वक उपवास करके ब्राह्मण बैठे और धृत से हवन करे ॥३०८॥

यन्न वेदध्वनिश्रांतं न च गोभिरलंकृतम् ।।
यन्न बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्गृहम् ॥३०९॥

जो घर वेद को ध्वनि से पवित्र नहीं, जो घर गौ से शोभायमान नहीं है, और जो घर बालकों से परिपूरित नहीं है वह घर शमशान के समान है ॥३०९॥

हास्येपि बहवो यत्र बिना धर्मवदति हि ॥
विनापि धर्मशास्त्रेण धर्मः पावनः स्मृतः॥३१०॥

हास्य के समय में भी बहुत से मनुष्य धर्म के विरूद्ध कहते ही तो धर्मशास्त्र के बिना ही बह धर्म पवित्र माना गया है ॥३१०॥

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत वृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥३११॥

जो मनुष्य अज्ञानता से हीन वर्ण को (अपने से अधम जाति को) अभिवादन करता है तो वह मनुष्य स्नानकर घृत का भोजन करने से शुद्ध हो जाता है ॥३११॥

समुत्पन्ने यदा स्नाने भुंक्ते वापि पिवेद्यदि ॥
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥३१२॥

जो मनुष्य स्नान के योग्य हो और वह विना स्नान किये ही यदि भोजन कर ले या जलपान करले तो वह स्नान कर के एकाग्र चित्त से आठ हजार गायत्री का जप करे ॥३१२॥

अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्ष लवणं तथा ॥
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांस भक्षणम् ॥३१३॥

जो मनुष्य उंगली से दतौन करता है, और जो केवल लवण का भोजन करता है, जो मिट्टी का भोजन करता है, यह गोमांसभक्षण की समान है अर्थात् उपरोक्त तीनों कार्यों को जो मनुष्य करता है उसको गोमांस भक्षण करने का पाप होता है॥३१३॥

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ॥
कार्पास दंतकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥३१४॥

दिन में कैथ की छाया का निवास, रात्रि में दही का भोजन, शमी और कपास की लकडी की दतौन करनेसे विष्णु की भी लक्ष्मी हर जाती है ॥३१४॥

शूर्पवातो नखाग्रांवु मानवस्त्रं घटोदकम् ॥
मार्जनीरजः केशांबु देवतायतनोगद्भवम् ॥३१५॥

सूप की पवन, नखों के अग्रभाग का जल, स्नान का वस्त्र, घट का जल, झाडू की धूल, केशों का जल यदि यह देवस्थान के हों ॥३१५॥

तेनावगुंठितं तेषु गंगांभाप्लुत एव सः ॥
मार्जनीरेणुकेशांबु हति पुण्यं दिवाकृतम् ॥३१६॥

और जो मनुष्य इनमें लोटताहै वह मानों गंगाजल में लोटता है (देवस्थानको छोडकर अन्य स्थान की) उडी हुई झाड़ू की धूल और केशों का जल इन दोनों का संसर्ग मनुष्योंके दिनमें किये हुए पुण्यों का नाश करता है ॥३१६॥

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके ऊपरस्थले ॥
अंतर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले सुरालये ॥३१७॥

वृषभैश्च तथोखाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥
शुचौ देशे तु संग्राला शर्कराश्मविवजिता ॥३१८॥

चमई की मिट्टी, चुहों के भट्टे की मिट्टी, जलमे की मिट्टी,श्मशान की मिट्टी, देवताओं के मंदिर की मट्टी और जिसे बैलों ने खोदाहो ऐसी मिट्टी इन सात स्थान की मिट्टी को कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ग्रहण न कर और पवित्र स्थान से, जिसमें कंकर और पत्थर न हों ऐसी शुद्ध मृत्तिका को ग्रहण करै ॥ ३१७-३१८॥

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दंतधावने ॥
नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ॥ ३१९ ॥

विष्ठात्याग ने के समय में, मैथुन में, मूत्रत्याग, होम, और दतौन के समय में, स्नान, भोजन, और जप करने के समय में सदा मौन धारण करना चाहिए। ॥३१९॥

यस्तु संवत्सरं पूर्ण भुक्ते मौनेन सर्वदा ॥
युगकोटिसहस्त्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥३२०॥

जो मनुष्य वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन मौन धारण कर भोजन करता है वह हजार करोड युग तक स्वर्ग में वास करता है ॥३२०॥

स्वानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥३२१॥

प्रौढपाद (पाँवपसारकर) स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवताओं की पूजा, स्वाध्याय, और पितरोंका तर्पण नहीं करना चाहिए ॥३२१॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात्पातयित्वा द्विजोत्तमम् ।
नाशयित्वा तु तत्सर्व भ्रूणहत्याफलं भवेत् ॥३२२॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को पातक लगाकर सर्वस्वमी दान करता है उसका वह सब दान से उत्पन्न हुआ फल नष्ठ होकर भ्रूणहत्या के फल को प्राप्त होताहै ॥३२२॥

ग्रहणोदाहसंक्रांती स्त्रीणां च प्रसवे तथा ।।

दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि प्रशस्यते ॥३२३॥

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और स्त्रियों को प्रसवकाल में जो दान करने को नैमित्तिक दान कहा है इस कारण वह दान रात्रि में भी श्रेष्ठ है ॥३२३॥

क्षौमजं वाथ कापसिं पट्टसूत्रमथापि वा ॥
यज्ञोपवीतं यो दद्या स्त्रदानफलं लभेत् ॥३२४॥

जो मनुष्यं रेशम, कपास, वा पट्ट सूत्र के बने हुए यज्ञोपवीत को दान करता है वह वस्त्र दान के फल को प्राप्त करता है ॥३२४॥

कांस्यस्य भाजनं दद्याघृतपूर्ण सुशोभनम् ।
तथा भक्त्या विधानेन अनिष्टोमफलं लभेत् ॥३२५॥

"घृतसे भरे हुए उत्तम कांसे के पात्र को भक्तिपूर्वक यथाविधि से जो दान करता है तो उसको अग्निमिष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥३२५॥

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छोमने च उपानहौ ।
स गच्छन्नन्यमार्गेपि अश्वदानफलं लभेत् ॥३२६ ॥

जो मनुष्य श्राद्ध के समयमें उत्तम उपानह को दान करता है वह कुमार्गगामी होकर भी अश्वदान के फल को प्राप्त करता है ॥३२६॥

तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्ण तु समाहितः ॥
स गच्छति ध्रुवं स्वर्ग नरो नास्त्यत्र संशयः ॥३२७॥

जो मनुष्य भक्ति सहित तेल से भरे हुए पात्र को दान करता है वह निश्चय ही स्वर्ग में जाता हैइसमें किंचित भी संदेह नहीं है ॥३२७॥

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥
पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्ग लोके महीयते ॥३२८॥

दुर्भिक्ष के समय में अन्न का देने वाला, सुकाल के समय में सुवर्ण का दान करनेवाला, और वन में (दुर्गम वन, जिसमें जल न हो) जल का देनेवाला मनुष्य स्वर्ग को जाता है ॥३२८॥

यावर्धमसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥
पृथिवी तेन दत्ता स्यादीही गां ददाति यः ॥३२९॥

गौ जब तक अधव्याई हो अर्थात् संतान सम्पूर्ण रूपसे पृथ्वी पर न आई हो तो वह तब तक पृथ्वी के समान है, जो मनुष्य इस प्रकार की गौ का दान करता है उसको पृथ्वी के दान करने की समान फल प्राप्त होता है ॥३२९॥

तेनाग्नो हुताः सम्यपितरस्तेन तर्पिताः ॥
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाहिकम् ॥३३०॥

जो मनुष्य प्रतिदिन गौ को ग्रास (खानेको) देता है वह इस ग्रास के दान से ही अभिहोत्र, पितृतर्पण, और देवताओं की पूजा इन सभी के फल को प्राप्त करता है ॥३३०॥

जन्मप्रभृति यत्पापं मावकं पैतृकं तथा ॥
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥३३१॥

जन्म से लेकर जितने पाप किये हैं वह, और मातापिताका जो अपराध किया है वह, वस्त्रदान करने से शीघ्र ही निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं ॥३३१॥

कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
उद्धरेनरकस्थानाकुलान्येकोत्तरं शतम् ॥३३२॥

जो मनुष्य श्रृंग आदिके सहित काली मृगछाला का दान करता है वह नरक में पडे हुए पूर्वपुरुषों के एक सौ एक कुलो का उद्धार करता है ॥३३२॥

आदित्यो वरुणो विष्णुब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥
शूलपाणिस्तु भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥३३३॥

सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चंद्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव; यह पृथ्वी के दान करने वाले की प्रशंसा करते हैं ॥३३३॥

बालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तर्षिमंडलम् ॥
गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीयति ॥३३४॥

सप्तर्षिमंडल पर्यन्त की जो बालू की राशि है वह सौ वर्ष पीछे एक एक पल कम होने से नष्ट हो जाती है ॥३३४॥

क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाले न चैव हि ॥३३५॥

परन्तु कन्या के दान करने से जो फल होता है वह नष्ट नहीं होता ॥३३५॥

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥
सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोधिकम् ॥३३६॥

दुःख की अवस्था में जो प्राण की रक्षा करता है उसको दान के तीन फल- धर्म, अर्थ, और काम प्राप्त होते हैं, समस्त दान के बीच में विद्या का दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है ॥३३६॥

पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥
सकामः स्वर्गमामोति निष्कामो मोक्षमामुयात् ॥३३७॥

पुत्रादि आत्मीय मनुष्य को और ब्राह्मण को विद्या का दान दे और कपटी मनुष्य को विद्या का दान न दे, किसी मनोरथ से विद्या का दान करने वाला स्वर्ग को और निष्काम विद्या का दाता मोक्ष को प्राप्त होता है ॥३३७॥

ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥
मातृपितृ परे चैव ऋतुकालाभिगामि नि ॥३३८॥

शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥
तस्यैव दीयते दानं स दीच्छेच्छेय आत्मनः ॥३३९॥

अपने कल्याण की इच्छा करनेवाला मनुष्य जो ब्राह्मण वेद का ज्ञाता, सवशास्त्र का पारदर्शी, माता पिता का भक्त, ऋतुकाल के समय में अपनी ही स्त्री में गमन करने वाला, शीलवान्, उत्तम आचरणों से युक्त, और प्रात:काल के समय स्नान करनेवाला हो उसी को दान देना चाहिए ॥३३८-३३९॥

संपूज्य विदुषो विमानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ॥
तत्कार्य नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥३४०॥

प्रथम विद्वान् ब्राह्मण का पूजन करके, अन्य ब्राह्मण को दान देना चाहिए, और ऐसे कार्य को नहीं करना चाहिए जिसे न कभी सुना और न कभी देखा हो ॥३४०॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः ॥
पितृणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥३४१॥

इसके उपरान्त कहता हूँ कि श्राद्धकर्म में जिन ब्राह्मणों को पितरों के निमित्त दान देने से अक्षय होता है और जिन ब्राह्मणों को दान देने से निष्फल होता है ॥३४१॥

न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ॥
नित्यं चानृतवादी च तांस्तु श्राधे नं भोजयेत् ॥३४२॥

जो अंगहीन हैं, रोगी, वेद और धर्मशास्त्रों को नहीं जानते, सर्वदा मिथ्या भाषण करते हैं. उनको श्राद्ध में भोजन करना योग्य नहीं ॥३४२॥

हिंसारतं च कपटमुपगुह्य श्रुतं च यः ॥
किंकर कपिलं काणं श्वीत्रिणं रोगिणं तथा ॥३४३॥

दुश्चर्माणं शीर्णकेशं पांडुरोग जटा धरम्॥
भारवाहिनं रौद्रं च द्विभार्य वृपलीपतिम् ॥३४४॥

हिंसक, कपटी, वेद को छिपाने वाला, नौकर, कपिल वर्ण, काना, कुष्टरोगी, दुशचर्मा, शोर्ण केश, (जिसके शिरके वाल गिर गए हों), पांडुरोगी, जटाधारी, बोझे को उठाने वाला, भयानक, दो स्त्रियों वाला, और वृशल पति को श्राद्ध में भोजन न करावे ॥३४३-३४४॥

भेदकारी भवेच्चैव बहुपीडाकरोपि वा ॥
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥३४५॥

जो मनुष्य परस्पर में भेद डलवाने वाला हो, अनेकों को पीडादायक, अंगहीन, वा जिसका कोई अंग अधिक हो उसको भी श्राद्ध में भोजन नहीं करवाना चाहिए ॥३४५॥

बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान् ॥
एतेषां नैव दातव्यः कदाचित प्रतिग्रहः ॥३४६॥

बहुत भोजन करने वाला, जिसके मुख पर दीनता हो, दूसरों के गुणों में दोष देखनेवाला, और क्रूर बुद्धि वाले पुरुष को कदापि घनादि वा पात्र का अन्न दान करके न दें ॥३४६॥

अथ चन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पक्तिदूषणैः ।।
अदृष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥३४७॥

यदि कोई मनुष्य किसी शारीरिक अंग के विकार के वश से पंक्ति को दूषित करनेवाला हो अर्थात् अंगहीन हो परन्तु वह वेद इत्यादि शास्त्रों का जाननेवाला हो तो यमराज ने उसको निर्दोषी मानकर पंक्ति को पवित्र करनेवाला कहा है ॥३४७॥

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने हे प्रकीर्तिते ॥

काणः स्यादेकहीनोपि दाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ॥३४८॥

श्रुति और स्मृति ही ब्राह्मणों के दो नेत्र हैं जो एक का जाननेवाला है वह एक नेत्र से हीन है, और जो दोनों विषयोंको नहीं जानता है उसको अँधा कहा है ॥३४८॥

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥
तस्य श्राद्ध न दातव्यं ब्रंधकस्यात्रिरब्रवीत् ॥३४९॥

जिसमें श्रुति, स्मृति, शास्त्र न हों, न शील हो, न कुल हो, उस अंधे और अधम को श्राद्ध में अन्नदान नहीं करना चाहिए यह अत्रि ऋषि ने कहा है ॥३४९॥

तस्मादेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥
न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरबवीत् ॥३५०॥

इस कारण वेद और धर्मशास्त्रों से ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व है, केवल वेद से ही ब्रह्मत्व प्राप्त नहीं होता, यह अत्रि का वचन है ॥३५०॥

योगस्थैलीचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥
लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येचैषोऽघरोत्तरम् ॥३५१॥

योगशस्त्र के कथित जिसके नेत्र हों, और अपने चरणों के जो अग्रभाग को देखता हो, अर्थात् कहीं भी कुदृष्टि से जो न देखता हो,

लौकिक व्यवहार का जाननेवाला हो, शास्त्र में कहे हुए ऊंच नीचको जो देखनेवाला हो ॥३५१॥

वैदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित् ॥
व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥
तादृशं भोजयेच्छाद्धे पितृणामक्षयं भवेत् ॥३५२॥

ज्ञानवान हो शास्त्र और वेद का जाननेवाला हो और जो व्रत करने वाला तथा कुलीन हो, वेद और स्मृतियोंमें सदा प्रीति रखनेवाला हो, ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध में जिमाने पर पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥३५२॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्पितृणां दीप्ततेजसाम् ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥३५३॥

नरकस्था विमुच्यते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम्।
तस्मादिप्रं परीक्षेत भाइकाले प्रयत्नतः ॥ ३५४ ॥

जितने मास उपरोक्त लक्षणयुक्त ब्राह्मण भोजन करता है उतने ही प्रकाशमान तेजस्वी पित्तर पिता, पितामह और प्रपितामह नरक में पडे हुए भी मुक्त होकर शीघ्र ही स्वर्ग में प्राप्त होते हैं, इस कारण श्राद्ध के समय यत्नपूर्वक ब्राह्मण की परीक्षा करनी चाहिए ॥३५३-३५४॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृ को द्विजः ॥

इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥३५५॥

जिस ब्राह्मण का पिता मर गया हो वह यदि प्रत्येक महीने की अमावास्या के दिन श्राद्ध न करे तो प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥३५५॥

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥
धनं पुत्राः कुलं तस्य पिवनिःश्वासपीडया ॥३५६॥

जो गृहस्थ कन्या के सूर्य अर्थात् कन्यागतों में श्राद्ध नहीं करता उसका धन, पुत्र, और वंश पितरों के श्वांस की पीडा से नष्ट होजाता है ॥३५६॥

कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ॥
शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्दश्चिकदर्शनम् ॥३५७॥

कन्याराशि पर सूर्य के होनेसे सब पितर अपने उत्तम पुत्रों के पास आ जाते हैं और जब तक वृश्चिक की संक्रान्ति का दर्शन न हो तब तक प्रेतपुरी सूनी रहती है ॥३५७॥

ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशा, पितरो गताः ।
पुनःस्वभवनं यांति शाप दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५८॥

और जब सूर्य वृश्चिक राशिमें आते हैं तब पितृगण श्राद्ध के विना पाये हुए उनको दारुण शाप देकर अपने स्थान को चले जाते हैं ॥३५८॥

पुत्र वा भ्रातरं वापि दौहित्र पौत्रकं तथा ॥
पितृकार्य प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥ ३५९॥

पितरों के कार्य को पुन, भाई, धेवता और पोता यदि यह भक्ति सहित करते हैं तो यह श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ॥३५९॥

यथा निर्मथनादग्निः सर्वकाठेषु तिष्ठति ॥
तथा संदृश्यते धर्मः श्राइदानान्न संशयः ॥३६०॥

जिस प्रकार से सम्पूर्ण काष्ठों में अग्नि मंथन करने से जानी जाती है उसी प्रकार से श्राद्ध किए बिना धर्म का स्वरूप ज्ञात नहीं होता इसमें संदेह नहीं है ॥३६०॥

यः प्रामोति तदा सर्व कन्यागते च गंगया ।
सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥३६१॥

सर्वयज्ञफलं विद्याच्छाद्धदानान्न संशयः ॥ ३६२ ॥

जो गंगाजी पर कन्या के सूर्य में श्राद्ध करताहै उसको सम्पूर्ण शास्त्रो के पढने का, सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान नका फल, सब यज्ञों का फल, और विद्यादान का फल निःसंदेह प्राप्त होताहै ॥ ३६१-३६२॥

महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्योपपातकः ॥
धनैर्मुक्तो यथा भानू राहुमुक्तश्च चंद्रमाः ॥३६३॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः संता पंच विलंघयेत् ॥
सर्वसौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः॥३६४॥

जिसप्रकार सूर्य भगवान् मेघों के ग्रास से मुक्त होतेहैं, और चंद्रमा जिस प्रकार राहु के ग्रास से मुक्त होता है उसी प्रकार से श्राद्ध के दान के प्रभाव से महापातकी मनुष्य भी सभी पापों से तथा उपपातकों से छूटकर सभी प्रकारके सुखों को प्राप्त करते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ३६३- ३६४॥

सर्वेषा मेव दानानां श्राददानं विशिष्यते ॥
मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राइनानं विशोधन म् ॥३६५॥

सब दानों में श्राद्धदान ही श्रेष्ठ है कारण कि सुमेरुपर्वत के समान किये हुए पापों को भी श्राद्ध का दान शुद्ध कर देता है ॥३६५॥

श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ॥
अमृतं ब्राह्मण स्यान्नं क्षत्रियानं पयः स्मृतम् ॥३६६॥

वैश्यस्य चानमेवाज्यं शूदान्नं रुधिरं भवेत् ॥
एतत्सर्वं मया ख्यातं श्राइकाले समुस्थिते ॥ ३६७ ॥ "

मनुष्य श्राद्ध करने से स्वर्ग लोक में सम्मान पाता है, श्राद्ध के समय ब्राह्मण का अन्न अमृत के समान है, क्षत्रिय का अन्न दूध के समान है,

वैश्य का अन्न घृत रूप है, और शूद्र का अन्न रुधिर के समान है इन सबका वर्णन मैंने तुमसे किया ॥३६६-३६७॥

वैश्वदेव च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ॥
अमृतं तेन विप्रानमग्यजु:साम संस्कृतम् ॥३६८॥

बलि, वैश्वदेव, होम, और देवताओं के पूजन में वेदोक्त मंत्रों को जप, ऋक्, यजु, और 'सामवेदक मंत्रों से अभिमंत्रित होने के कारण ब्राह्मण का अन्न निर्मल अमृतरूप है ॥३६८॥

व्यवहारानुपूज्येण धर्मेण बलिर्भिजितम् ॥
क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ॥ ३६९॥

व्यवहारकी रीति से धर्मपूर्वक बलवानों से जीतकर संचित किया है इस कारण क्षत्रिय का अन्न दूध के समान है, और यज्ञ की रक्षा करनेके कारण वैश्य का अन्न धृतरूप है ॥३६९॥

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूदो निषादकः ।
पशुम्लेच्छोपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः॥३७०॥

देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल, यह दस प्रकारके ब्राह्मण कहे हैं ॥ ३७०॥

संन्ध्या नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥

अतिथि वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७१ ॥

जो प्रतिदिन संध्या, नान, जप, होम, देवपूजा अतिथिकी सेवा और जो वैश्वदेव करते हैं उनको "देव" ब्राह्मण कहते हैं ॥३७१॥

शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥
निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥३७२॥

शाक, पत्ते, फल, मूल को भक्षण करनेवाला और जो वन में निवासकर नित्य श्राद्ध में रत रहता है ऐसे ब्राह्मणको "मुनि' कहा है ॥३७२॥

वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजे त् ॥
सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥३७३॥

जो प्रतिदिन वेदान्त को पढ़ताहै और जिसने सबका संग त्याग दियाहै, सांख्य और यो गके ज्ञानमें जो तत्पर है उस ब्राह्मण को "द्विज' कहा है ॥३७३॥

अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥
आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते॥३७४॥

जिसने रणभूमिमें सबके सन्मुख धान्वीयों को युद्धके आरंभ में जीता हो और अस्त्रों से परास्त किया हो उस ब्राह्मण को "क्षत्रिय" कहतेहैं ॥३७४॥

कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥

वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥३७५॥

खेती के कार्य में रत और गौ की पालना में लीन, और वाणिज्य के व्यवहार में जो ब्राह्मण तत्पर हो उसको 'वैश्य' कहते हैं ॥३७५॥

लाक्षालवणसंमिश्र कुसुंभं क्षीरसर्पिषः ॥
विक्रेता मधुमां सानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥३७६॥

लाख, लवण, कुसुंभ, घी, मिठाई, दूध, और मांस को जो ब्राह्मण बेचता है उसको 'शूद्र' कहतेहैं ॥३७६॥

चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्त था ॥
मत्स्यमांसे सदा-लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥३७७॥

चोर, तस्कर, सुचक - निकृष्ट सलाह देनेवाला, दंशक- कडवा बोलने वाला और सर्वदा मत्स्य मांस के लोभी ब्राह्मण को "निषाद" कहते हैं ॥३७७॥

ब्रह्मतत्व न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः॥३७८॥

जो ब्रह्म वेद और परमात्मा के तत्व को कुछ नहीं जानता; और केवल यज्ञोपवीत के बल से ही अत्यन्त गर्व प्रकाश करता है, इस पाप से उस ब्राह्मणको 'पशु' कहतेहैं ॥३७८॥

वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥
निश्शंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥३७९॥

जो निःशंक भाव से बावडी, कूप, तालाब, बाग, छोटा तालाव इनको बन्द करताद है इस ब्राह्मण को 'म्लेच्छ कहा है ॥३७९॥

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥
निर्दयः सर्व भूतेषु विप्रचंडाल उच्यते ॥३८०॥

क्रियाहीन, मूर्ख, सभी धर्मों से रहित और सर्व प्राणियों के प्रति जो निर्दयता प्रकाश करता है उस ब्राह्मण को 'चांडाल' कहते हैं ॥३८०॥

वैदैविहीनाश्च पठंति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ॥
पुराणहीना कृषिणो भवंति भ्रष्टास्ततो भागवता भवति ॥ ३८॥

जिनको वेद नहीं आता वह शास्त्र को पढते हैं, जिन्हें शास्त्र नहीं आता वह पुराणों को पढ़ते हैं, और जिन्हें पुराण नहीं आता वह खेती करते हैं और जिनसे खेती नहीं होती वह बैरागी हो जाते हैं ॥३८१॥

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः ॥
श्राद्धयज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥३८२॥

ज्योतिषी,अथर्ववेद का ज्ञाता, कीर- जो तोकेको समान केवल पढाई हुई बोली बोलता हो और पुराणके पाठ करने वाले को श्राद्ध, यज्ञ, और महादान में कदापि वरण न करे ॥३८२॥

श्राद्दे च पितरो घोर दानं चैव तु निष्फलम् ॥
यज्ञेच फलहानिःस्यात्तस्मात्तापरिवर्जयेत् ॥३८३॥

उपरोक्त ब्राह्मणको श्राद्ध में भोजन कराने से पितर घोर नरक में जाते हैं, दान देन से दान निष्फल होता है, यज्ञ में वरण करने से फल की हानि होती है, इस कारण इन कामों में ऐसे ब्राह्मणों को छोड़ देना चाहिए ॥३८३॥

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः॥
चतुर्विप्रा न पूज्यते बृहस्पतिसमा यदि ॥३८४॥

भेड़ों को पालने वाला, चित्रकार, वैद्य, और नक्षत्र पाठक, यह चार प्रकार के ब्राह्मण बृहस्पति के समान पंडित होन पर भी पूजनीय नहीं हैं ॥३८४॥

मागधो माथुरश्चैव कापटः कीटकानजौ ॥
पंच विप्रा न पूज्यते बृहस्पति समा यदि ॥३८५॥

मगध देश के निवासी, माथुर, कपट देश का रहनेवाला, कीकट, और कान देश में जो उत्पन्न हुआ हो, यह पांच ब्राह्मण बृहस्पति के समान पंडित होने पर भी पूजनीय नहीं हैं ॥३८५॥

क्रयकीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ॥
तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिंडं न विद्यते ॥ ३८६॥

खरीदी हुई कन्या भार्या नहीं हो सकती इस कारण उससे उत्पन्न हुए पुत्र पितरों को पिंड देने के अधिकारी नहीं हैं ॥३८६॥

अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिचते द्विजः ॥
सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥३८७॥

जो ब्राह्मण अष्टशल्ली के जल को अंजुली से पीता है वह जल मदिरा और गोमांसभक्षण के समान है ॥३८७॥

उर्ध्वजपेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥
तावच्चंडालरूपेण यावद्गां न मजति ॥३८८॥

जो अजंध (जंघा ऊपर को करके) ब्राह्मण के दोनों चरणों को धोते हैं वह जब तक गंगा स्नान नहीं करते तब तक चांडाल (अशुद्धि) अवस्था में रहते हैं ॥३८८॥

दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥ . .
अजाखुररज: स्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥३८९॥

दीपक, शय्या, और आसन की छाया, कपास के वृक्ष की दतौन और बकरी के खुरों से उडी हुई धूरि इसका स्पर्श इन्द्र की भी लक्ष्मी हरता है ॥३८९॥

गृहाद्दशगुणं कूपं कूपादशगुणं तटम् ।
तटादशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥३९०॥

घर के स्नान की अपेक्षा कुँए का स्नान करने से दशगुण फल होता है, कुँए से दसगुणा तट पर और तट से दस गुणा नदी में स्नान करने से फल मिलताहै, और गंगा के स्नान से असंख्य पुण्य प्राप्त होता है उसकी गणना नहीं हो सकती ॥३९०॥

सवद्यद्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥
वापी कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥३९१॥

ब्राह्मणों को स्रोतों का जल, क्षत्रियों को सरोवर का जल, वैश्य को वापी कूप का जल, और शूद्र को बरतन का जल साधारण स्नान के उपयोगी है तथा इस वचन से वर्णानुसार इन सब जलों के पार्थक्य के निर्णय करने से जाना जाता है, सोते का जल सबसे श्रेष्ठ है, सरोवर का जल उससे कम है, वापी और कुँए का जल उससे अपकृष्ट है और बरतन का जल सबसे निषिद्ध है ॥३९१॥

तीर्थस्नान महादानं यच्चान्यात्तलतर्पणम् ॥
अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपात तः ॥३९२॥

यदि किसी का भुगु पतन हो तो तीर्थ का स्नान, महादान, और तिल से तर्पण, एक वर्ष पर्यन्त तक करना चाहिए ॥३९२॥

गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ।
मघा पिंडप्रदा नं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥३९३॥

गंगा पर, गया में, तथा अमावस्या के दिन अथवा क्षय तिथि में और वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीमुख श्राद्ध के करने में पिंडदान का मघानक्षत्र के होने पर कुछ दोष नहीं है इनके अतिरिक्त अन्य स्थल में मघानक्षत्र में श्राद्ध वर्जित है ॥३९३॥

घृतं वा यदि तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥
चत्वारो ह्याज्यसंस्थाना हृतं नैव तु वर्जयेत् ॥३९४॥

घृत, तेल, दूध, और दधि यह चार वस्तु चाहे नीच से भी प्राप्त हों तब भी इनके द्वारा हवन करने में किसी प्रकार का दोष नहीं है ॥३९४॥

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्मापितानत्रिणा स्वयम् ॥
इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्मनिष्ठिताः ॥३९५॥ य

इदं धारयिष्यति धर्मशास्त्रमतंद्रिता: ॥
इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यति त्रिविष्टपम् ॥३९६॥

अत्रिजी के कहे हुए इन धर्मों को सुनकर उन धर्मपरायण ऋषियों ने महात्मा आत्रि जी से यह कहा कि, जो मनुष्य आलस्प को छोडकर इस धर्मशास्त्र को धारण करेंगे अर्थात इसके मर्म को ग्रहण करेंगे, वह इस लोक में यश प्राप्त कर अंत में स्वर्गधाम को प्राप्त होंगे ॥३९५-३९६॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ॥
आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महती श्रियम् ।। ३९७ ॥

इसके पाठ करने से विद्यार्थी विद्या को, और धन की इच्छा करनेवाला धन को और आयु की इच्छा करनेवाला आयु को, सौन्दर्य श्री की इच्छा करनोला सौन्दर्य श्री को प्राप्त करेगा ॥३९७॥

इति श्रीमद अत्रि महर्षि स्मृतिः समाप्ता ॥ १ ॥

श्रीमद अत्रि महर्षि स्मृतिः समाप्त हई ॥ १ ॥